ध्यान एक : रूप अनेक

– डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया

परम श्रद्धेय डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल
की प्रथम पुण्य तिथि पर
स्वाध्याय हेतु यह ज्ञान पुष्प
आराध्य कुमार, अविनाश कुमार टड़ैया, मुम्बई
की ओर से सप्रेम समर्पित है।

ध्यान एक : रूप अनेक

लेखिका
विद्वत्रत्न डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया
बी.ए.ऑनर्स, एम.ए., पी.एच.डी. (स्वर्णपदक प्राप्त)
मो. 09321295265 / Email: dpptmumbai@gmail.com
मुंबई (महाराष्ट्र)

प्रकाशक :
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015
फोन : (0141) 2705581, 2707458
E-mail : ptstjaipur67@gmail.com

ध्यान एक : रूप अनेक : **डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया**

प्रथम संस्करण : 1000
(26 मार्च 2024)

मूल्य : **12 रुपये**

विषय-सूची

क्र.सं.	विषय	पृ.सं.
1.	ध्यान की उपयोगिता	1
2.	ध्यान का नियामक कारण कौन?	3
3.	ध्यान का प्रारम्भिक रूप	4
4.	ध्यान का स्वरूप	4
5.	परम ध्यान (आत्मध्यान) के पूर्व की तैयारी	17
	(1) अंतरंग सावधानी सहित तैयारी	17
	(i) ध्यान	17
	(ii) ध्याता	19
	(iii) ध्येय	19
	(iv) ध्यान का फल	21
	(2) बाह्य सावधानी सहित तैयारी	21
	• ध्यान का समय	22
	• ध्यान के स्थान	22
	• ध्यान के आसन	22
6.	ध्यान की सामग्री	24
7.	ध्यान से स्ट्रेस फ्री (तनाव मुक्त) कैसे होंगे? दु:खों से मुक्त कैसे होंगे?	25
8.	ध्यान के भेद	27
9.	प्रश्नोत्तर	37

मुद्रक :
देशना एन्टरप्राइजेज
जयपुर

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करने में 2152/- रु.
श्री महेश जे. पारेख, मुम्बई द्वारा सधन्यवाद प्राप्त हुए।

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक **'ध्यान एक : रूप अनेक'** की लेखिका डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया बचपन से ही प्रतिभाशाली रही हैं। उन्होंने पूत के लक्षण पालने में ही नज़र आ जाते हैं - कहावत को चरितार्थ किया है। विद्वत्ता की दृष्टि से वे पिताश्री डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के पदचिन्हों पर ही चल रही हैं। उनके द्वारा अभी तक छोटी-बड़ी 57 पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं; जो आपकी बहुमुखी प्रतिभा का प्रमाण है। जैनदर्शन के सभी महत्वपूर्ण विषयों पर आपकी लेखनी चली है।

साथ-ही-साथ आपने जैन सिद्धान्तों पर आधारित अनेक 'गेम्स' भी बनाए हैं, जिनके खेलने के नियम भी जैन सिद्धान्तों का ज्ञान कराते हैं। इन 'गेम्स' की विशेषता यह है कि इनको खेलने से बच्चों को सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ-साथ अहिंसात्मक आचरण की प्रवृत्ति भी सहज विकसित हो जाती है। इनमें जीत हिंसात्मक कार्य मार-पीट से नहीं, ज्ञान-ध्यान से हासिल की जाती है। बच्चों को ज्ञान-ध्यान करने की प्रेरणा मिलती है।

आपने 'आचार्य कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार एक समालोचनात्मक अध्ययन' विषय पर शोध कर राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। आपने अपने शोध ग्रन्थ में शोध समीकरणों (rules and regulations) को ध्यान में रखते हुए आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों और टीकाकारों का सर्वांगीण (सम्पूर्ण) विवेचन सरल-सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया है, जो कि विद्वत्जन और बुद्धिजीवी वर्ग के साथ-साथ जनसामान्य को भी अपनी ओर आकृष्ट (attract) करता है। यही कारण है कि 'परमागम ऑनर्स' के पंचवर्षीय पाठ्यक्रम में यह पुस्तक शामिल की गई है।

आपके द्वारा लिखी गई बाल पुस्तकें भी अद्यावधि (अब तक) जैन समाज में प्रचलित अन्य पाठ्यपुस्तकों से भिन्न शैली, रंगीन चित्रमय प्रस्तुति एवं मूल तत्वज्ञान के समावेश के कारण अपनी विशिष्ट पहचान रखती हैं।

आपकी सभी कृतियाँ अध्यात्मरस से सराबोर और भेदज्ञान से ओतप्रोत हैं। आप विभिन्न आयुवर्ग को ध्यान में रखकर भिन्न-भिन्न शैली में अध्यात्म को सरल भाषा में जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास कर रही हैं।

जिन्हें आचार्य कुन्दकुन्द के नियमसार, पंचास्तिकाय संग्रह, अष्टपाहुड आदि ग्रन्थों का गहराई से अध्ययन-मनन करना है व ध्यान के प्रारम्भिक रूप की गहराइयों में उतरना है, उनके लिए आपने - **सिद्धान्त विशारद** का पंचवर्षीय कोर्स प्रारम्भ किया है।

गूढ़ से गूढ़ विषय को सरलतम रूप में प्रस्तुत करने की कला में आप माहिर हैं। इसी सरलता की छाप आपकी प्रस्तुत टीका 'ध्यान एक : रूप अनेक' में भी दिखाई पड़ती है। ध्यान के विभिन्न रूपों का सरल-सहज भाषा में प्रस्तुतिकरण इस पुस्तक की खास विशेषता है। इसे पढ़कर पाठक 'मैं ध्यान नहीं कर सकता' कहना बंद कर देंगे। सभी पाठक इससे लाभान्वित हों, इसी भावना से प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है। शीघ्र प्रकाशन व्यवस्था के लिए डॉ. अखिल बंसलजी का बहुत आभार है।

विपिन जैन 'शास्त्री' मुम्बई
प्रकाशन मंत्री

हाल ही में अनेक छात्रों के अनुरोध के कारण और जिनवाणी की प्रभावना हेतु डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया अनेक व्यावहारिक विषयों को आधार बनाकर अत्यंत सरल और सटीक भाषा में जिनवाणी का मर्म समझाने हेतु अपने सोशल मीडिया अकाउंट का अवलंबन लिया है।

उनके द्वारा लिखे गए साहित्य का लाभ लेने हेतु नीचे दिए गए उनके सोशल मीडिया एकाउंट्स को फॉलो करें :

Facebook : https://www.facebook.com/d.shuddhatmprabha.taraiya
Instagram : https://www.instagram.com/shuddhatmprabha
Twitter : https://twitter.com/DrTaraiya
LinkedIn : https://www.linkedin.com/in/dr-shuddhatmprabha-taraiya-49b2b3212
YouTube : https://youtube.com/@vidwatratnadrshuddhatmprab4714

× × × × ×

साहित्य विशारद की अधिक जानकारी हेतु नीचे दिए गए वेबसाइट या फ़ोन नंबर पर contact करें :

www.practicaljainism.com **श्री अविनाश टड़ैया : 9221225264**

अपनी बात

यह विषय महत्वपूर्ण है, अतः आप सभी इसे 'ध्यान' से सुनिए – इस वाक्य में मैं आपका ध्यान अपने विषय की ओर आकर्षित करना चाह रही थी। इसप्रकार 'ध्यान' पद का प्रयोग हम अपने दैनिक जीवन में अनेक बार अनेक प्रकार से करते हैं।

'ध्यान' शब्द सुनते ही हमारे मन मस्तिष्क में सहज ही एक छवि, मुद्रा उभरती है – एक जगह खड़े या बैठे हुए, आधी आँख बंद किए हुए, हाथ पर हाथ रखकर, शांत चित्त, सौम्य मुद्रा वाले व्यक्ति की अथवा भगवान की।

इस बात में कोई दो मत नहीं हैं, सभी सहमत हैं कि 'ध्यान' अवस्था में न तो शरीर की ही कोई क्रिया होती है और न ही वचन की; पर उस समय 'मन' की क्या स्थिति रहेगी? इस पर भिन्न-भिन्न मत हैं। कोई श्वास पर ध्यान केंद्रित करने को कहता है, तो कोई शरीर पर, कोई चिंताओं से रहित होने की बात करता है, तो कोई 'पाज़िटिव' चिंतन पर जोर देता है, कहीं स्व चिंतन पर जोर दिया गया है, तो कहीं विकल्पों का ही निषेध किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में उन सभी पर विचार किया गया है।

वस्तुतः ध्यान एक ऐसा विषय है, जिसके बारे में विशेष जानने की जिज्ञासा सभी को होती है। सभी उसे करना चाहते हैं; अतः उसकी विधि जानना चाहते हैं। मैं भी इसका अपवाद नहीं थी, अतः जब भी मौका मिलता में दादा (डॉक्टर हुकुमचंद जी भारिल्ल) से इस संबंध में अनेकों प्रश्न करती रहती। दादा गंभीरता से सब प्रश्न सुनते, पर तुरंत कुछ जवाब नहीं देते थे;किंतु उनके द्वारा दिए गए प्रवचनों में प्रकरण के अनुसार कहीं न कहीं उनके जवाब आ जाते।

लॉकडाउन के समय दादा ने ध्यान के ऊपर व्यवस्थित प्रवचन किए, जिनमें अनेकों नई बातें आई। जिनके ऊपर भी श्रोताओं को अनेक शंकायें उठीं। मैं दादा से उनके समाधान करने का कहती, लिखने का बोलती, तो दादा मुझे ही लिखने को कह देते थे। दादा की उसी प्रेरणा स्वरूप मैंने कुछ शंकाओं के समाधान 'बढ़ते कदम परमानंद की ओर' पुस्तक में किए हैं।

दादा के जाने के पश्चात् मेरे समक्ष पुनः अनेकों प्रश्न आए, उनका समाधान एवं ध्यान का सामान्य -विशेष स्वरूप प्रस्तुत पुस्तक में दिया गया है।

दादा की प्रथम पुण्यतिथि पर यह पुस्तक मैं उन्हें ही समर्पित करती हूँ। यही मेरी उनके प्रति श्रद्धांजलि है।

– डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया

लेखिका की अन्य कृतियाँ

01. जैन नर्सरी (हिन्दी, अंग्रेजी, गुज. मराठी, तमिल)
02. जैन के.जी. भाग-1 (हिन्दी, अंग्रेजी, गुज. मराठी, तमिल)
03. जैन के.जी. भाग-2 (हिन्दी, अंग्रेजी, गुज. मराठी, तमिल)
04. जैन के.जी. भाग-3 (हिन्दी, अंग्रेजी, गुज. मराठी, तमिल)
50-06. जैन कलर बुक भाग 1-2 (ड्राइंग बुक)
07-10. जैन जी.के. भाग-1 से 4 तक (हिन्दी, अंग्रेजी)
11-16. जैन जी.के. भाग-5 से 10 तक (हिन्दी)
17-18. चलो पाठशाला, चलो सिनेमा भाग 1-2
19. सीखें हम गाते-गाते
20. शब्दों की रेल
21-23. आगम प्रवेश भाग-1,2,3
24. मुझमें भी एक दशानन रहता है
25. संस्कार का चमत्कार (दादी की कहानी)
26. बढ़ते कदम
17. राम कहानी
28. विचार के पत्र : विकार के नाम
29. तलाश : सुख की
30. मुक्ति की युक्ति
31. एक संभावना यह भी
32. सत्ता का सुख
33. बालबोध प्रशिक्षण गाईड
34. प्रवेशिका प्रशिक्षण गाईड
35. अर्चना गाईड
36. नयचक्र गाईड (अध्यात्म के नय)
37. आगम के नय
38. अनुपम खोज (सप्तभंगी टीका)
39. उपादान निमित्त दोहा (टीका)
40. परीक्षामुख प्रवेशिका (टीका)
41. प्रमाणज्ञान
42. प्रमाणज्ञान : सम्यग्ज्ञान
43. आत्मानुभूति कैसे?
44. जैनदर्शनसार
45. आचार्य अमृतचन्द्र और उनका पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (लघु शोध)
46. आचार्य कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार : एक समालोचनात्मक अध्ययन (शोध प्रबंध)
47. मिनी समयसार
48-49. समयसार प्रश्नोत्तरमाला भाग-1, 2
50-52. परमागम प्रवेशिका भाग-1, 2, 3/4
53-54. मीडियम समयसार : भाग-1, 2
55. आनंद एक : रूप अनेक
56. बढ़ते कदम : परमागम की ओर
57. द्रव्यसंग्रह प्रवेशिका
58. ध्यान एक : रूप अनेक

जैन गेम्स

1. नो टाइम पास
2. हमारी लाईफ
3. लगे रहो जीवराज
4. चौबीसी (Poster)
5. Maze to Moksh

E-books

01. मिनी समयसार भाग -1
02. मिनी समयसार भाग -2
03. परमागम प्रवेशिका भाग - 1
04. परमागम प्रवेशिका भाग - 2
05. परमागम प्रवेशिका भाग - 3
06. परमागम प्रवेशिका भाग - 4
07. मीडियम समयसार भाग - 1
08. प्रमाणज्ञान : सम्यग्ज्ञान
09. समयसार प्रश्नोत्तरमाला : भाग-1
10. आनंद एक : रूप अनेक
11. बढ़ते कदम : परमागम की ओर

ध्यान एक : रूप अनेक

'ध्यान' शब्द सुनते ही हमारे चित्त में अनेक विकल्प खड़े हो जाते हैं।

सर्वप्रथम श्रद्धा का भाव हमारे अंदर उत्पन्न होता है। भगवान की ध्यान मुद्रा की मूर्ति हमारी आँखों के सामने नजर आने लगती है। कठोर तपस्या करते हुए मुनिराजों के चित्र चलचित्र (मूवी) की तरह हमारे मन में नजर आने लगते हैं और हमें लगता है कि 'ध्यान' हमारे बलबूते (शक्ति) के बाहर की बात है, हम ध्यान कर ही नहीं सकते।

उक्त धारणा कथंचित् सत्य अवश्य है, किंतु पूर्ण सत्य नहीं। इस सब का कारण है ध्यान के संदर्भ में हमारा आधा-अधूरा ज्ञान।

तो आइए, आज हम ध्यान के सभी पहलुओं पर चर्चा करते हैं।

जिसप्रकार जल तो जल है; पर नदी का जल, समुद्र का जल, बादल का जल, मीठा जल, खारा जल, ठंडा जल, गर्म जल आदि विषय बदलते ही फल भी बदल जाते हैं; उसीप्रकार ध्यान तो ध्यान है, चित्त की एकाग्रता है; पर विषय बदलते ही ध्यान का फल भी बदल जाता है। **जैसे- शरीर का ध्यान करते हैं तो शरीर संबंधी फल मिलता है और आत्मा का ध्यान करते हैं तो आत्मा संबंधी फल मिलता है।** इसप्रकार ध्यान एक होते हुए भी अनेक रूप हो जाता है। ध्यान के स्वरूप पर विचार करते समय हम उन अनेक रूपों पर विस्तार से चर्चा करेंगे। अभी तो हम उसकी उपयोगिता की चर्चा करते हैं।

1. ध्यान की उपयोगिता

ध्यान की उपयोगिता बताने की आवश्यकता नहीं है, हम सभी उससे परिचित ही हैं; क्योंकि हमारे कोई भी काम ध्यान के बिना होते ही नहीं। हम एक कप अच्छी चाय भी ध्यान के बिना नहीं बना सकते।

अन्य कामों की तो बात जाने ही दो। मंदिरों में विराजमान भगवान की ध्यान अवस्था की मूर्ति भी ध्यान की उपयोगिता बताती है।

(i) सफलता का सोपान – 'ध्यान' यह हमारे जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। अंग क्या है, यह तो हमारे जीवन में तिल में तेल की तरह समाया हुआ है। हमारे सारे कार्य 'ध्यान' से ही हो सकते हैं। हमें इस दुनिया के सुख चाहिए तो भी ध्यान की आवश्यकता है और अलौकिक, पारलौकिक, पारमार्थिक सुख चाहिए तो भी ध्यान बिना संभव नहीं।

शारीरिक स्वास्थ्य के लिए भी ध्यान जरूरी है और मानसिक स्वास्थ्य के लिए भी। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों में सफलता एकाग्रता से, ध्यान से ही मिलती है। विशेष क्या कहें? प्रत्येक अवस्था का प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने कार्यक्षेत्र में सफलता ध्यान से ही प्राप्त करता है – चाहे वह बालक हो, युवा हो या वृद्ध हो; स्त्री हो या पुरुष। जैसे गोल्ड मेडल बिना ध्यान के प्राप्त नहीं हो सकता, व्यापार-नौकरी में सफलता बिना ध्यान के नहीं मिल सकती, एक सुव्यवस्थित स्वच्छ घर भी ध्यान के बिना संभव नहीं। अधिक क्या कहें? ध्यान के बिना कहीं भी सफलता नहीं मिलती। संक्षेप में कहें तो हमारे सर्वांगीण (संपूर्ण) विकास में सहयोगी है 'ध्यान'। किसी भी क्षेत्र में **हमारी सफलता का सोपान है 'ध्यान'।**

(ii) विफलता का आधार – यदि सफलता का सोपान है ध्यान, तो हमारी विफलता का आधार भी होता है ध्यान। गलत जगह पर लगाया गया ध्यान सुख के स्थान पर दुःख; खुशी के स्थान पर परेशानी का कारण भी बन जाता है। जैसे- जब हम अपने भूतकाल की परिस्थिति का स्मरण कर दुःखी होते हैं, तो वह ध्यान तिर्यंच गति का कारण बन जाता है और जब हम किसी को परेशान कर, दुःखी कर आनंदित होते हैं तो वह नरक गति का कारण बन जाता है। बच्चों को चिड़ाना, अप्रैल फूल, मज़ाक आदि सभी इसी श्रेणी में आते हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि **चारों गतियों का कारण भी ध्यान ही है और मोक्ष भी ध्यान से ही मिलता है।** ध्यान के उक्त दोनों अंतर को बताते हुए **इष्टोपदेश** के 20वें श्लोक में कहा गया है कि– 'ध्यान से चिंतामणि रत्न[1] और खली का टुकड़ा[2] – दोनों ही प्राप्त हो सकते हैं। बुद्धिमान मनुष्य किस वस्तु को चाहेगा? आदर करेगा?'

2. ध्यान का नियामक कारण कौन?

'रुचि' ध्यान की नियामक कारण है। जो विषय हमारी रुचि का होता है, उस पर सहज ही ध्यान जाता है; उसका चिंतन–मनन भी सहज ही चलता है; क्योंकि जिसके प्रति रुचि जागृत हो जाती है, उसका ध्यान आए बिना नहीं रहता। उसका ध्यान करने के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता; सब कुछ सहज ही होता है। जैसे – मूवी सभी देखते हैं, उनमें कपड़ों की रुचि वाला कपड़ों की डिजाइन देखता है और फर्नीचर की रुचि वाले फर्नीचर के। प्यार करने वाला प्यार को देख लेता है और लड़ाई करने वाला लड़ाई को। जिसप्रकार भरत–बाहुबली का नाटक देखते समय राग की रुचि वाले उनका प्रेम देखते हैं, द्वेष की रुचि वाले उनकी लड़ाई को आदर्श बना लेते हैं और वैराग्य की रुचि वाले वैराग्य से प्रभावित होते हैं; उसीप्रकार जिसे विषय–कषाय में सुख बुद्धि होती है, वे शास्त्रों को पढ़कर भी विषय–कषाय की वृद्धि कर लेते हैं और जिन्हें विषय–कषाय में अरुचि होती है, वे मूवी से भी वैराग्य की वृद्धि कर लेते हैं। वस्तुतः तो जिसमें सुख बुद्धि होती है, उसमें रुचि होती है। जिसमें दुःख बुद्धि होती है, उसमें अरुचि होती है। अतः रुचि बदलने के लिए विषय–कषायों में दुःख की अनुभूति जरूरी है। विषय सुखों की अनित्यता, अशरणता आदि बारह भावनाओं के विचार से उनमें दुःख की अनुभूति आती है, दुःख की अनुभूति से आत्मा की ओर रुचि जागृत होती है।

रुचि ध्यान की नियामक होने से चिंतन की भी नियामक है। संक्षेप में कह सकते हैं कि **रुचि ध्यान की नियामक कारण है।**

---

1. ऐसा कीमती दुर्लभ रत्न जिससे मन में सोचने पर ही समस्त सुख सामग्री मिल जावे।
2. ऐसी सस्ती वस्तु जो गाय –भैंस आदि के खाने में डाली जाती है।

3. ध्यान का प्रारम्भिक रूप

'चिंतन' ध्यान का प्रारंभिक रूप है। किसी विषय की गहराई में जाने के लिए उसके स्वरूप का बार-बार विचार करना ही चिंतन है। यद्यपि चिंतन वस्तु स्वरूप के निर्णय के लिए किया जाता है, तथापि यदि विषय रुचिकर हो तो निर्णीत विषय भी बार-बार चिंतन का आधार बनता है। (-तत्वार्थ मणिप्रदीप पृष्ठ 343-344)

चिंतन चलने पर उस विषय में और विशेष जानने की इच्छा होती है।

किसी विषय को जानने की इच्छा (जिज्ञासा) भी चिंतन को प्रेरित करती है। जिज्ञासा जितनी प्रबल होगी, उसी के अनुपात में चिंतन भी गंभीर होगा। विशेष बात ध्यान रखने की यह है कि चिंतन ज्ञानात्मक होता है, ध्यानात्मक नहीं।

इसप्रकार हम कह सकते हैं कि जिसे जिसकी रुचि होती है, पहले उसके बारे में विकल्पात्मक चिंतन चलता है; फिर रुचि की तीव्रता में विकल्पात्मक चिंतन निर्विकल्प ध्यान में परिवर्तित हो जाता है, यह एक सहज प्रक्रिया है।

4. ध्यान का स्वरूप

ध्यान माने एकाग्रता। स्थिर हुए चित्त की एकाग्रता का नाम ही 'ध्यान' है अर्थात् व्यक्ति जिस समय जिस भाव का चिंतन करता है, उस समय उस भाव के साथ तन्मय होता है। हमारा चित्त बहुत चंचल है। वह प्रतिक्षण यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ तीव्र गति से दौड़ता ही रहता है, उस चित्त को एक जगह स्थिर करना ही 'एकाग्रता' है।

संक्षेप में कहें तो ध्यान करने की अनिवार्य शर्त है- **चित्त की एकाग्रता।** इसके बिना ध्यान संभव ही नहीं।

इस परिभाषा के अनुसार तो किसी भी विषय में चित्त की एकाग्रता ध्यान कहलाएगी और इसप्रकार का ध्यान तो सभी जीव अक्सर करते रहते हैं।

इसी परिभाषा के अनुसार जीवों को अनिष्ट पदार्थों के संयोग होने पर व रोग जनित पीड़ा होने पर उन्हें दूर करने के लिए होने वाला प्रबल चिंतन अथवा इष्ट पदार्थों के वियोग होने पर उन्हें प्राप्त करने के लिए व भविष्य में विषयों की प्राप्ति की कामना में चित्त का तल्लीन होना भी ध्यान की श्रेणी में आ जाता है।

जैनदर्शन में इस ध्यान को **आर्तध्यान** कहा है जो कि वर्तमान में भी दुःखरूप है और भविष्य में फल रूप में भी तिर्यंच गति का कारण होने से दुःखी होने रूप ही है। इसप्रकार हम देखते हैं कि उक्त ध्यान तो दुःख रूप है, दुःखदायी है। इस चिंतन से, ध्यान से तो सभी बचना चाहेंगे। यह ध्यान, यह चिंतन तो चिंता का कारण हो गया।

अब प्रश्न उठता है – कौन सा ध्यान है मुक्ति का कारण, सुख का कारण, आनंद का कारण?

जवाब मिलता है– चिंता रहित चिंतन ही है – 'मुक्ति का कारण'

कहा भी है– **'एकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानं'** अर्थात् समस्त चिंताओं का निषेध करते हुए चित्त का किसी एक विषय पर एकाग्र होना ही ध्यान है।

उक्त परिभाषा में दो मुख्य बिंदु हैं– (1) चित्त किसी एक विषय पर एकाग्र होना चाहिए और (2) चित्त समस्त चिंताओं (आकुलता–व्याकुलता) से रहित होना चाहिए।

जैसा कि सर्वार्थसिद्धि में कहा गया है – **'चित्तविक्षेपत्यागो ध्यानम्'** अर्थात् चित्त के विक्षेप (व्यग्रता, आकुलता–व्याकुलता) का त्याग करना ध्यान है। (9/20/858)

इसी बात को तत्त्वानुशासन में भी कहा है – **'एकाग्रग्रहणं चात्र वैयग्र्य विनिवृत्तये। व्यग्रं हि ज्ञानमेव स्याद् ध्यानमेकाग्रमुच्यते। (59)** अर्थात् इस ध्यान के लक्षण में जो एकाग्रता का ग्रहण है, वह व्यग्रता के

निषेध के लिए है। ज्ञान ही वस्तुत: व्यग्र होता है, ध्यान नहीं। ध्यान को तो एकाग्र कहा जाता है। इस परिभाषा में ज्ञान और ध्यान में अन्तर बताते हुए यह कह दिया गया है कि ज्ञान में ही चित्त यहाँ-वहाँ भटकता है और राग-द्वेष वाले विकल्प होते हैं; किन्तु ध्यान तो एकाग्र ही होता है।

राजवार्तिक में भी इसी तरह का कथन करते हुए कहा है कि- 'अनित्यादि विषयों का चिंतन जब ज्ञान रूप होता है, तब अनुप्रेक्षा (भावना) कहलाता है और जब उस चिंतन का निरोध हो जाता है, तब धर्मध्यान कहलाता है।' इस परिभाषा में कहा जा रहा है कि जब अनित्य, अशरण आदि 12 भावनाओं के विषयों में बार-बार चिंतन धारा चालू रहती है, तब वे ज्ञानरूप होती हैं तथा जब सभी चिंतन बंद हो जाता है, तब वह धर्मध्यान कहलाता है।[1]

यहाँ विशेष बात ध्यान रखने की यह है कि इस प्रकरण में 'चिंता' का अर्थ 'चिंतन' है, तनाव (टेंशन) नहीं।

इसी तरह का भाव व्यक्त करते हुए **पंचाध्यायी उत्तरार्द्ध**[2] में कहा है- जो ज्ञान किसी एक विषय में निरंतर रहता है, उसी को ध्यान कहते हैं। इस ध्यानरूप ज्ञान में भी वास्तव में न तो क्रम ही है और न अक्रम ही है ।

ध्यान में एक वृत्ति होने से वह ज्ञान एक सरीखा ही लगता है। स्थिर स्वरूप ही प्रतीत होता है, इसलिए ध्यानस्थ ज्ञान में कथंचित् अक्रम (क्रमवर्तीपना नहीं) होता है; किन्तु वह बार-बार उसी ध्येय की तरफ लगता है, इसलिए वह कथंचित् क्रमवर्ती भी है।

इस ध्यान रूप ज्ञान में जो क्रमवर्तीपना है, उसमें अर्थ (एक पदार्थ) से अर्थांतर (दूसरे पदार्थ का ज्ञान) होना हेतु नहीं है; किंतु एक पदार्थ में ही क्रम से पुन: पुन:वृत्ति होती रहती है अर्थात् ध्यानरूप ज्ञान में एक

---

1. अनित्यादि विषयचिंतनं यदा ज्ञानं तदा अनुप्रेक्षाव्यपदेशो भवति, यदा तत्रैकाग्रचिन्तानिरोधस्तदा धर्म्यध्यानम्। (9/36/12/632/15)
2. गाथा नं. 843-844, 845

पदार्थ से दूसरे पदार्थ का ज्ञान होने के कारण क्रमवर्ती नहीं कहा है; अपितु एक ही पदार्थ में क्रम से बार-बार पुनरावृत्ति (रिपीटेशन) होती है; इस कारण ध्यानरूप ज्ञान को कथंचित् क्रमवर्ती कहा है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि यद्यपि ध्यानस्थ ज्ञान में क्रम-अक्रम का विचार नहीं है; तथापि भिन्न-भिन्न अपेक्षा से उसे कथंचित् क्रमवर्ती व कथंचित् अक्रमवर्ती कह दिया जाता है।

चूँकि ध्यान अवस्था में उपयोग फिर-फिर (बार-बार) उसी में लगाना पड़ता है, इसलिए वह कथंचित् क्रमवर्ती है और ध्यान अवस्था में एकाग्रवृत्ति है, इसलिए वह कथंचित् अक्रमवर्ती है।

इस परिभाषा में ज्ञान की निरन्तरता पर विशेष ज़ोर दिया गया है अर्थात् ध्यान में किसी एक विषय पर निरन्तर चिंतन-मनन चलना चाहिए।

संक्षेप में कहें तो 'किसी विषय को जानना' ज्ञान की श्रेणी में आता है और 'उसी विषय को लगातार जानते रहना अर्थात् किसी एक विषय में ज्ञान का रहना' ध्यान कहलाता है।

उक्त परिभाषाओं के आधार पर कोई कह सकता है कि- चिंता रहित चिंतन ही है आनंद का कारण, मुक्ति का कारण।'

यदि ऐसा मानेंगे तो फिर किसी को मारने का चिंता रहित चिंतन भी मुक्ति का कारण हो जाएगा; क्योंकि इस चिंतन की पूर्ति होने पर, संबंधित व्यक्ति आनंदित होता ही है। जैसे - सुपारी (पैसे लेकर काम करने का कांट्रेक्ट) लेकर हत्या करने वाला कोई व्यक्ति कहे कि मैं कुछ दिमाग नहीं लगाता हूँ, ना ही कोई टेंशन लेता हूँ; बस्स.... पैसा लेता हूँ और मार देता हूँ। मुझे तड़पा-तड़पा कर मारने में बहुत आनंद आता है। इसप्रकार पाँचो पापों को सोच-समझकर करते हुए आनंद का अनुभव मुक्ति का कारण हो जाएगा।

हाँ! हाँ!! सही प्रश्न किया तुमने। इसीलिए जैन दर्शन में इनका स्पष्ट विभाजन करते हुए उक्त सभी आनंद को नरक गति का कारण कहा गया है।

सभी पापों से संबंधित भावों में और उस रूप कार्य करने में आनंदित होकर तल्लीन रहना ही रौद्रध्यान है, यहाँ तक कि अनुकूल संयोगों में आनंदित होना भी (परिग्रहानन्दी) रौद्रध्यान है। संक्षेप में कहें तो **पाँचो पापों में आनंदरूप प्रवृत्ति रौद्रध्यान है।**

अधिकांश मत ध्यान की परिभाषा व उसका फल बताते हुए कहते हैं कि- ''व्यक्ति जिस समय जिस भाव का चिंतवन करता है, उस समय वह उस भाव के साथ तन्मय होता है। इसलिए जिस किसी भी देवता या मंत्र आदि को ध्याता है, उस समय वह अपने को वह ही प्रतीत होता है। इसप्रकार अनेक प्रकार के देवताओं को ध्याकर साधकजन अनेक प्रकार के ऐहिक फलों की प्राप्ति कर लेते हैं।''[1]

इस परिभाषा में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ध्याता जिस विषय का ध्यान करता है, उससे तन्मय होता है; अपने आप को वही महसूस करता है।

जैन मत में इस ध्यान को भी आर्त-रौद्र ध्यान की श्रेणी में रखा है। जैसा कि **तत्त्वानुशासन** में कहा भी है- ऐहिक फल को चाहने वाले को जो ध्यान होता है; वह या तो आर्तध्यान है या रौद्रध्यान।[2]

इस परिभाषा में कहा गया है कि यद्यपि किसी देवता या मंत्र का ध्यान करने से ऐहिक फलों की प्राप्ति तो हो जाती है; तथापि ऐहिक फल की कामना से किया गया ध्यान, निश्चयध्यान नहीं, धर्मध्यान नहीं; वह तो आर्त-रौद्र ध्यान की श्रेणी में ही गिना जाता है।

आराधनासार में तो यहाँ तक कहा है कि- जब तक ध्यानयुक्त योगी को किसी प्रकार का विकल्प उत्पन्न होता रहता है, तब तक उसे शून्य भी ध्यान नहीं है; या तो चिंता है या भावना है।[3]

---

1. जैनेन्द्र सिद्धान्त भाग-2, पृ.-494
2. तद्ध्यानं रौद्रमार्तं वा यदैहिकफलार्थिनाम्।।220।।
3. यावद्विकल्पः कश्चिदपि जायते योगिनो ध्यानयुक्तस्य। तावन्न शून्यं ध्यानं, चिन्ता वा भावनाथवा।।83।।

इस परिभाषा में ध्यान को 'समस्त विकल्पों से रहित निर्विकल्प' कहा गया है और विकल्प सहित ध्यान को 'चिंता या भावना' कहा है।

इस पर कुछ जन बड़े शान से कहते मिल जाएँगे – हम तो मस्त मौला हैं। हम तो पाप प्रवृत्तियों को करने की बात दूर रही, अनुमोदना भी नहीं करते। हम तो बस मन–वचन–काय की प्रवृत्ति से रहित साम्य भाव से बैठकर अपनी आती–जाती श्वास का ही ध्यान करते हैं और स्वस्थ रहते हैं।

इसप्रकार की मान्यता वालों से मैं कहना चाहूँगी कि आप तो देह का ध्यान कर रहे हैं, तो फिर आप 'देहस्थ' (देह में स्थित) हुए। जो अपनी आत्मा में स्थित होते हैं, वास्तविक स्वस्थ (स्व में स्थित) तो वे ही हैं। स्व में स्थित रहना, अपनी आत्मा में स्थित रहना ही 'आत्मध्यान' है।

इसप्रकार जैन दर्शन में दुःखों से मुक्ति व सुखों की प्राप्ति कराने वाले ध्यान को निर्विकल्प व आत्मा की स्वयं की अनुभूति रूप बताया है। जैसा कि **तिलोयपण्णति** के निम्न कथन से स्पष्ट होता है – 'जिस जीव के ध्यान में यदि ज्ञान से निजात्मा का प्रतिभास नहीं है, तो वह ध्यान नहीं है। उसे प्रमाद, मोह अथवा मूर्छा जानना चाहिए।'[1]

इस परिभाषा में आत्मा की अनुभूति पर विशेष जोर दिया गया है और आत्मा की अनुभूति रहित ध्यान को 'प्रमाद, मोह अथवा मूर्छा' नाम दिया गया है।

धवला में भी इसीप्रकार का भाव व्यक्त किया गया है– 'जो परिणामों में स्थिरता होती है, उसका नाम ध्यान है और जो चित्त का एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ में चलायमान होना है; वह या तो भावना है या अनुप्रेक्षा है या चिंता (चिंतन) है।'[2]

---

1. ज्झाणे जदि णियआदा णाणादो णावभासदे जस्स।
   ज्झाणं होदि ण तं पुण जाण पमादो, हु मोहमुच्छा वा।।9/40/तत्त्वानुशासन 169।।
2. जं थिरमज्झवसाणं तं ज्साणं जं चलंतयं चित्तं।
   तं होइ भावणा वा अणुपेहा वा अहव चिन्ता।।13/5, 426 गाथा–12/64।।

इस ध्यान की परिभाषा में परिणामों की 'एक विषय में स्थिरता' पर विशेष जोर दिया गया है तथा 'चित्त की चंचलता को भावना, अनुप्रेक्षा या चिंतन' कहा गया है।

ज्ञानार्णव में आत्मस्वरूप के सम्मुख होने पर ही ज्ञान की सिद्धि बताते हुए कहा है कि- 'जिस समय मुनि का चित्त क्षोभ रहित हो आत्मस्वरूप के सम्मुख होता है, उस काल ही ध्यान की सिद्धि निर्विघ्न होती है।'[1]

इस परिभाषा में चिंता, आकुलता-व्याकुलता रहित आत्मस्वरूप में स्थिरता को ही सार्थक ध्यान कहा गया है। इससे ही सभी बाधा रहित परमसुख की प्राप्ति होती है।

तत्त्वानुशासन में निश्चयनय से ध्यान का स्वरूप बताते हुए कहा है कि- 'चूँकि आत्मा अपने आत्मा को, अपने आत्मा में, अपने आत्मा के द्वारा, अपने आत्मा के लिए, अपने-अपने आत्महेतु से ध्याता है; इसलिए अभिन्न षट्कारक रूप परिणत आत्मा ही निश्चयनय की दृष्टि से ध्यान स्वरूप है।'[2]

इस परिभाषा में पर की पराधीनता रहित, स्व की पूर्ण स्वतंत्रता का उद्घोष करते हुए कहा गया है कि आत्मध्यान में पर के सहयोग की रंचमात्र आवश्यकता नहीं। वह तो स्वयं में, स्वयं के द्वारा, स्वयं के लिए, स्वयं से होता है। यही आत्मध्यान **दुःखों से मुक्ति व सुख की प्राप्ति कराने वाला आत्मध्यान ही वास्तविक ध्यान है।**

---

1. अविक्षिप्तं यदा चेतः स्वतत्त्वाभिमुखं भवेत्।
   मनस्तदैव निर्विघ्ना ध्यानसिद्धिरुदाहृता।।28/19।।
2. स्वात्मानं स्वात्मनि स्वेन ध्यायेत्सवस्मै स्वतो यतः।
   षट्कारकमयस्तस्माद्ध्यानमात्मैवं निश्चयात्।।74।।

संक्षेप में कहें तो आत्मध्यान से ही मुक्तिमार्ग आरंभ होता है और आत्मध्यान से ही पूर्णता को प्राप्त होता है।

आत्मध्यान से आरंभ होने वाले ध्यान को **धर्मध्यान** कहते हैं अर्थात् निज आत्मा का अवलोकन करना, जानना और उसी में उपयोग को एकाग्र करना ही वास्तविक धर्मध्यान है, निश्चय धर्मध्यान है।

ज्ञान द्वारा ज्ञान को जानने पर आनंद की अनुभूति होती है। यही आनंद वास्तविक आनंद है, स्वाधीन आनंद है। इस जानने में इंद्रियों की भी पराधीनता नहीं है; इसलिए यह अतीन्द्रिय है,अनुपम है।

समस्त चिंताओं से रहित स्व के चिंतन–मनन पूर्वक स्व में होने वाली यह एकाग्रता ही दुःखों से मुक्ति का कारण है। यह एकाग्रता यदि एक समय को भी हो जाती है, तो मुक्ति मार्ग आरंभ हो जाता है और जब यह लगातार अंतर्मुहूर्त तक टिक जाती है तो समस्त दुःखों से मुक्ति हो जाती है। ऐसी उत्कृष्ट एकाग्रता तो उत्तम संहनन वालों के ही होती है।

जैसे **तत्त्वार्थसूत्र** में कहा है कि–

'उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तमुहूर्तात्' (9–27)
अर्थात् उत्तम संहनन वाले के एक विषय में चित्त वृत्ति का रोकना ध्यान है, जो अंर्तमुहूर्त तक होता है।

विशेष इतना कि एक का अर्थ 'कोई एक विषय' भी होता है और 'आत्मा' भी होता है। चूँकि यहाँ पर उत्तम संहनन वाले के, उस ध्यान की चर्चा है, जिस ध्यान में अंतर्मुहूर्त में संपूर्ण दुःखों से मुक्ति हो जाती है; आत्मा से परमात्मा बन जाते हैं। अतः यहाँ एक का अर्थ 'आत्मा' लेना चाहिए। आत्मा अर्थ लेने पर उक्त सूत्र का अर्थ निम्न प्रकार होगा–

'उत्तम संहनन वाले के आत्मा में चित्त वृत्ति का रोकना ध्यान है, जो अंतर्मुहूर्त तक होता है।' अर्थात् जब यह ध्यान लगातार अंतर्मुहूर्त तक होता है, तभी अष्टकर्म को नाश करने वाला, अतीन्द्रिय

अनन्त सुख को प्राप्त कराने वाला होता है। जिस ध्यान के होने पर ऐसा आनंद, ऐसा सुख प्रगट होता है, जो कभी समाप्त नहीं होता; नष्ट नहीं होता; अनंत काल तक ज्यों का त्यों बना रहता है।

इसप्रकार इस सूत्र में ध्यान होने के समय की मर्यादा भी दी गई है। ऐसा परम ध्यान हर किसी को लगातार अंतर्मुहूर्त नहीं हो सकता। यह तो मात्र उत्तम संहनन वाले जीव को ही होता है। संहनन छः होते हैं- इनमें आरंभ के वज्रवृषभनाराचसंहनन, वज्रनाराचसंहनन व नाराचसंहनन - ये तीन संहनन उत्तम संहनन हैं; किन्तु मुक्ति मात्र वज्रवृषभनाराचसंहनन वाले को ही होती है।

संक्षेप में कहें तो उक्त सूत्र में सर्वोत्कृष्ट ध्यान की चर्चा है।

अब प्रश्न उठता है ध्यान के संबंध में इतने विभिन्न मत क्यों? आखिर क्यों? क्यों ?? क्यों ???

उक्त सभी मतों पर गंभीरता से विचार करते हैं, तो हम पाते हैं कि लक्ष्य की, उद्देश्य की भिन्नता होने से ही यह मतभेद हैं। जैसे - जहाँ शारीरिक स्वास्थ्य उद्देश्य है, वहाँ शरीर की क्रिया विशेष पर ध्यान केंद्रित करने को कहा जाता है और जहाँ आत्मिक स्वास्थ्य उद्देश्य है, वहाँ आत्मा के विचारों पर ध्यान केंद्रित करने की बात की गई है।

यह मतभेद होने पर भी सब में बहुत समानता भी है। सभी मत के ध्यान की परिभाषा में शारीरिक क्रियाएँ चलना-फिरना, खाना-पीना, सोना, बोलना सब बंद कर एक जगह शांति से बैठना या खड़े रहना होता है तथा मन में उठने वाले अनेक विकल्पों का निषेध कर, किसी एक विकल्प पर चित्त स्थिर होता है। जैसा कि ध्यान की विभिन्न परिभाषाओं में कहा भी है - **किसी एक विषय में निरंतर रूप से ज्ञान का रहना ध्यान है।**

जैनाचार्यों द्वारा दी गई उक्त सभी परिभाषाओं पर विचार करते हैं तो ध्यान के संदर्भ में निम्न निष्कर्ष निकालते हैं :-

(1) ध्यान समस्त चिन्ताओं से रहित होता है।

(2) ध्यान समस्त विकल्पों से रहित होता है।

(3) ध्यान में चित्त किसी एक विषय में एकाग्र होता है।

(4) जिस विषय में चित्त एकाग्र होता है, उससे तन्मय होता है। जैसे– पर में चित्त एकाग्र होता है तो पर से तन्मयता होती है और स्व में चित्त एकाग्र होता है तो स्व में तन्मयता होती है। पर में तन्मयता से दु:खी होते हैं व स्व में तन्मयता से सुखी। स्व में तन्मयता का नाम ही आत्मानुभूति है, निश्चयध्यान है।

(5) ध्यान में स्व आत्मा का प्रतिभास (अनुभूति, फीलिंग) होना चाहिए।

(6) जब उक्त आत्मा का ध्यान उत्तम संहनन वाले को लगातार अंतर्मुहूर्त तक होता है तब अतीन्द्रिय आनंद की प्राप्ति होती है, जो अनंत काल तक जैसे का तैसा बना रहता है।

हम ध्यान अवस्था को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं –

(1) ध्यान और (2) परम ध्यान

किसी एक विषय में चित्त का स्थिर होना **ध्यान** है और ज्ञान का ज्ञान में स्थिर होना **परमध्यान** है। ध्यान में एक विषय पर चिंतन होता है; परमध्यान में समस्त चिंतन बंद होकर, समस्त विकल्प रहित होकर उस मय हो जाते हैं अर्थात् ज्ञान ज्ञानमय हो जाता है। जैसा कि **द्रव्यसंग्रह** की 56वीं गाथा में कहा है कि – 'हे भव्य ! कुछ भी चेष्टा मत करो, कुछ भी मत बोलो, कुछ भी चिंतवन मत करो, जिससे आत्मा निज आत्मा में तल्लीन रूप से स्थिर हो जाए। यह आत्मलीनता ही परमध्यान है।' इसमें कहा गया है कि परमध्यान अवस्था में शरीर से कुछ नहीं करना है, मुँह से कुछ बोलना नहीं है, और मन से कुछ सोचना भी नहीं है अर्थात् काय, वचन और मन – तीनों के कार्यों से पूर्ण निवृत्ति।

काया (शरीर) से कुछ करना आहार वर्गणा[1] का कार्य है। वाणी से

1. जिसका दूसरा अंश ना हो सके, शक्ति (भाव) के ऐसे अविभागी अंश को अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं। समान अविभाग प्रतिच्छेदों के समूह को वर्ग कहते हैं। वर्गों के समूह वर्गणा कहते हैं।

कुछ बोलना भाषा वर्गणा का कार्य है और मन से कुछ सोचना मनो वर्गणा का कार्य है- यह सब तो पुद्गल की पर्याय हैं। आत्मा का कार्य तो जानना-देखना है, जो कि ज्ञान-दर्शन गुण की पर्यायें हैं। कुछ करो मत अर्थात् बुद्धि पूर्वक, प्रयास पूर्वक मन-वचन-काय की कुछ भी चेष्टा नहीं करना है। जैसे न शरीर की कोई चेष्टा करनी है और न ही चेष्टा रोकने की कुछ कोशिश करना है; क्योंकि उपयोग दोनों जगह लगेगा। कुछ करेंगे तब भी; कुछ रोकने का प्रयास करेंगे तब भी। इसीप्रकार मुँह से बोलने में और मन से सोचने में भी उपयोग लगता है; क्योंकि जिसप्रकार वाणी से विकल्प हटने पर वचन नहीं निकलते हैं; उसीप्रकार मन से उपयोग हटने पर मन के विकल्प नहीं होते हैं। अत: परम ध्यान अवस्था में काय, वचन और मन से पूर्ण निवृत्ति की बात कही गयी है।

ध्यान अवस्था का कोई काल नियत नहीं है। वह लंबे समय तक भी रह सकता है, किंतु परमध्यान अवस्था अंतर्मुहूर्त तक हो जाए तो समस्त कर्मों का नाश हो जाता है। जैसे- मुनिराज ऋषभदेव 1000 वर्ष तक ध्यान अवस्था में रहे, मुनिराज बाहुबली 1 वर्ष तक ध्यान अवस्था में रहे। अंतिम समय में उनको परमध्यान अवस्था हुई और वे भगवान बने; किंतु भरत चक्रवर्ती मुनि दीक्षा लेने के पश्चात् तुरंत ही परमध्यान अवस्था को प्राप्त हो गए। अतः वे अंतर्मुहूर्त में ही सभी कर्मों से मुक्त हो भगवान बन गए।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि परमध्यान तो एकमात्र स्व को अपनेपन से जानने रूप ही है। जानना ज्ञान है और स्व को जानते रहना, लगातार जानते रहना आत्मध्यान है, सर्वोत्कृष्ट ध्यान है, परमध्यान है।

जैनदर्शन में बताए गए चारों ध्यान में से निश्चय धर्मध्यान और शुक्लध्यान परम ध्यान के भेद हैं।

अपनी आत्मा का अवलोकन करना, जानना और उसी में उपयोग एकाग्र करना ही निश्चय धर्मध्यान है।

यह ध्यान गृहस्थों के भी संभव है। निश्चय धर्मध्यान निर्विकल्पक होता है।[1] विकल्पातीत होने से परमध्यान को निर्विकल्प ध्यान भी कहते हैं।

लौकिक में ध्यान और परम ध्यान को पर्यायवाची रूप में ही प्रयुक्त किया जाता है, तथा शास्त्रों में भी इस तरह के प्रयोग सर्वत्र मिल जाएँगे। ध्येय में एकत्व प्राप्त करके किसी भी पदार्थ का ध्यान करता हुआ साधु जब निस्पृह वृत्ति वाला होता है, तब उसका वह ध्यान निश्चय ध्यान कहलाता है।[2]

'जब साधु एकाग्रता प्राप्त करके' इस कथन द्वारा मुनिराज स्पष्ट रूप से कह रहे हैं– यह उन साधु की बात है जिन्होंने आत्म स्वभाव में एकाग्रता प्राप्त कर ली है। जिन्होंने आत्मा द्वारा आत्मा को जान लिया है, जो ज्ञान द्वारा ज्ञान में लीन होकर अपने में 'यह ही मैं हूँ' – ऐसी अनुभूति कर चुके हैं; उनकी उस अनुभूति को, एकाग्रता को ही निश्चय ध्यान कहते हैं।

विकल्पात्मक चिंतन परमध्यान के पश्चात् भी चलता है और पूर्व भी।

परमध्यान के पूर्व चलने वाले विकल्पात्मक चिंतन के संदर्भ में **द्रव्यसंग्रह** की 48वीं गाथा में कहा है कि – यदि तुम 'अनेक प्रकार के विकल्प जाल रहित ध्यान की सिद्धि के लिए चित्त को स्थिर करना चाहते हो, तो इष्ट और अनिष्ट विषयों में मोह, राग व द्वेष न करो।'

उक्त गाथा में कहे गये– 'अनेक प्रकार के विकल्प जाल रहित ध्यान की सिद्धि के लिए' कथन द्वारा लेखक ने स्पष्ट कर दिया है कि निर्विकल्प ध्यान के पूर्व चंचल चित्त को स्थिर करने के लिए पंचेन्द्रिय विषयों से दृष्टि हटानी होगी। मोह–राग–द्वेष नहीं करने होंगे। पंचेन्द्रिय विषयों से दृष्टि कैसे हटेगी व मोह–राग–द्वेष कैसे कम होंगे? इसकी आरंभिक विधि

---

1. ध्यान का स्वरूप : डॉ. हुकुमचंद भारिल्ल पृष्ठ–15/20
2. गाथा–55

बताते हुए द्रव्य संग्रह के टीकाकार ब्रह्मदेव जी ने लिखा है कि – 'प्राथमिक पुरुष की अपेक्षा से सविकल्प अवस्था में विषय और कषाय दूर करने के लिए पंच परमेष्ठी आदि परद्रव्य भी ध्येय होते हैं, तत्पश्चात् जब अभ्यास के वश से चित्त स्थिर हो जाता है।' तब शुद्ध, बुद्ध, एक स्वभावी निज शुद्धात्मा का स्वरूप ही ध्येय हो जाता है।

इसप्रकार ध्येय–आत्मा में एकत्व की प्रतीति ही आत्मानुभूति है, निश्चयध्यान है, परम ध्यान है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मन को एकाग्र करना ध्यान है। वैसे तो किसी न किसी विषय में हर समय ही मन अटका रहने के कारण व्यक्ति को कोई न कोई ध्यान बना ही रहता है, परंतु दुःखदायक होने के कारण वह चिंतन ध्यान नाम नहीं पाता है। व्यक्ति जिस समय जिस भाव का चिंतन करता है, उस समय वह उस भाव के साथ तन्मय होता है। इसलिए व्यक्ति जिस किसी का ध्यान करता है, चिंतन करता है; तब वह अपने को वैसा ही महसूस करता है। जैसे– जो अशुद्धात्मा का ध्यान करता है, वह अशुद्धता को प्राप्त होता है और जो शुद्धात्मा का ध्यान करता है, वह शुद्धता को प्राप्त होता है। **शुद्धात्मा को जानना व जानते रहना ही परम ध्यान है।**

इसप्रकार हम देखते हैं कि जैन मतानुसार संपूर्ण दुःखों से मुक्ति का, परिपूर्ण अविनाशी अनंत सुख प्राप्ति का और भक्त से भगवान बनने का एक ही उपाय है– **'आत्मध्यान'**।

दुनिया में 'पर' में एकाग्र होने को भी ध्यान कहा जाता है; लेकिन वह ध्यान सदा के लिए व संपूर्ण दुःखों से मुक्ति नहीं दिला सकता। वह ध्यान अतीन्द्रिय आनंद, अतीन्द्रिय सुख प्राप्त नहीं करा सकता। अतः वह ध्यान तप नहीं, परम ध्यान नहीं, सर्वोत्कृष्ट ध्यान नहीं।

'स्व' में एकाग्र होना; समस्त 'पर' एवं विषय विकारों से चित्त हटाकर एक आत्मा में स्थिर होना ही 'आत्मध्यान' है। यही सर्वोत्कृष्ट ध्यान है, ध्यान तप है; परम ध्यान है।

5. परम ध्यान (आत्मध्यान) के पूर्व की तैयारी

सार्थक निर्विघ्न आत्मध्यान रूप परम ध्यान करने के पूर्व कुछ सावधानियाँ आवश्यक होती हैं। जो दो प्रकार की होती हैं–

प्रथम – अंतरंग सावधानी सहित तैयारी

द्वितीय – बाह्य सावधानी सहित तैयारी

1. अंतरंग सावधानी सहित तैयारी – ध्यान करने के पूर्व अंतरंग तैयारी में ध्यान, ध्याता, ध्येय व ध्यान के फल का स्वरूप जानना आवश्यक है। इसमें भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण ध्यान का ध्येय निश्चित करना है; क्योंकि सही ध्येय ही सही परिणाम तक पहुँचा सकता है अर्थात् ध्यान तो दुधारी तेज धार वाली तलवार के समान है। सही तरीके से चलाई जाए तो शत्रुओं का नाश करती है और गलत तरीके से चलाने पर स्वयं के ही नाश का कारण बन जाती है। इसके लिए शास्त्रों का अध्ययन आवश्यक है। **ध्यान के पूर्व बुद्धिपूर्वक अध्ययन ही होता है, उपदेश भी अध्ययन का ही दिया जाता है। अतः अध्ययन ही ध्यान है।** इसलिए अंतरंग तैयारी के रूप में सर्वप्रथम ध्यान, ध्याता, ध्येय और ध्यान के फल का स्वरूप जानना आवश्यक है।

(i) ध्यान – ध्येय पर ध्याता का उपयोग, चित्त केंद्रित होना ध्यान है।

छद्मस्थों का उपयोग तो सदा किसी न किसी विषय पर रहता ही है, क्योंकि जब तक लगातार ध्यान न हो, तब तक उन्हें जानने में आता ही नहीं है अर्थात् छद्मस्थों का उपयोग यदि एक समय का हो तो जानने में आता ही नहीं है; पकड़ में आता ही नहीं है। असंख्य समय बाद पकड़ में आता है। उपयोग अधिक समय स्थिर हो, तभी जानने में आता है और उपयोग अधिक समय स्थिर होने का नाम ही 'ध्यान' है। इस अपेक्षा कोई न कोई ध्यान जीवों को सदाकाल होता ही रहता है।

अपनी आत्मा को छोड़कर बाह्य पदार्थों के मिलने पर आनन्दित होना और न मिलने पर दुःखी होना भी ध्यान ही है। हम जब दुःखी होते हैं या आनंदित होते हैं तो आर्त और रौद्र – ये दोनों ध्यान होते हैं और जब त्रिकाली ध्रुव आत्मा में उपयोग स्थिर होता है; तब धर्मध्यान व शुक्लध्यान होते हैं।

यदि हम सदा दुखी होते रहते हैं या आनंदित होते रहते हैं, तो फिर हम सदा आर्त-रौद्र ध्यान करते रहते हैं। इसप्रकार आर्त-रौद्र ध्यान संसारी जीवों के सदा होते रहते हैं तथा मोक्ष व मोक्ष मार्ग में धर्मध्यान व शुक्लध्यान होते हैं।

संक्षेप में कहें तो ध्यान चारित्र गुण की पर्याय है, अतः जीव में ध्यान तो सदा रहेगा ही।

ध्यान के स्वरूप की विशेष विस्तृत चर्चा हम पूर्व में कर चुके हैं; फिर भी ध्यान के संदर्भ में कुछ बातें विशेष स्मरण रखने योग्य हैं :-

(क) ध्यान किया नहीं जाता; हो जाता है। जैसे प्रेम किया नहीं जाता; हो जाता है। इसी कारण कहा जाता है कि ध्यान प्रयत्न साध्य नहीं (किया नहीं जाता), सहज साध्य है (हो जाता है)।

(ख) विकल्पात्मक ज्ञान में करने जैसी भाषा आती है। जब जीव विकल्पात्मक ज्ञान में बुद्धिपूर्वक अनित्य, अशरणादि बारहभावनाओं का चिंतन करता है, तब मन विषय-कषाय से हटेगा। जब मन विषय-कषाय से हटेगा, तो निरंतर स्व का चिंतन-मनन चलेगा। यही प्रक्रिया दोहराने पर विकल्पात्मक चिंतन निर्विकल्प ध्यान में सहज चला जाएगा। अतः विकल्पात्मक ज्ञान में सही निर्णय करना जरूरी है। सही निर्णय देशनालब्धि में होता है।

(ग) विकल्पात्मक ज्ञान में परद्रव्य का अनित्यादि रूप चिंतन अतन्मयपने से अर्थात् 'यह मैं नहीं हूँ' – इस रूप में चलता है तथा स्व का नित्यादि रूप चिंतन तन्मयपने से अर्थात् 'ये ही मैं हूँ' – इस रूप में चलता है।

(ii) ध्याता – ध्यान करने वाले को ध्याता कहते हैं। चारों ध्यानों की अपेक्षा सभी जीव ध्याता हैं।

आर्त-रौद्र ध्यान की अपेक्षा सभी ज्ञानी-अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि-सम्यग्दृष्टि ध्याता हैं।

धर्मध्यान की अपेक्षा चौथे से सातवें गुणस्थानों तक के जीव ध्याता हैं।

शुक्लध्यान की अपेक्षा आठवें से चौदहवें गुणस्थान तक के जीव ध्याता हैं।

आत्मध्यान की अपेक्षा सभी सम्यग्दृष्टि ज्ञानी और केवलज्ञानी ध्याता हैं।

(iii) ध्येय – ध्यान के विषय को ध्येय कहते हैं अथवा ध्येय माने जिसका ध्यान करना है। अतः ध्येय बनाए बिना ध्यान नहीं हो सकता। ध्येय को लक्ष्य बना कर ध्यान करने पर अन्य बहुत से पदार्थ ज्ञान के ज्ञेय बनते हैं, जानने में आते हैं; पर उनसे ध्यान में अंतर नहीं पड़ता। जैसे आत्मा को ध्येय बनाकर ध्यान करने पर अबुद्धिपूर्वक बहुत सी वस्तुएँ ज्ञान का ज्ञेय बनती हैं, पर वे ध्येय में विघ्न नहीं बनती। जब जीव इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोगों को चिंतन का विषय बनाते हुए दु:खी होता है या आनंदित होता है, तब आर्त व रौद्र ध्यान होते हैं तथा जब त्रिकाली ध्रुव आत्मा को ध्यान का ध्येय बनाता है, तब धर्मध्यान व शुक्लध्यान होते हैं।

ध्यान का समुचित फल प्राप्त करने के लिए ध्येय का चुनाव सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जैसे- जो जीव दु:खी घटनाओं को ध्यान का

ध्येय बनाते हैं, वे फल में दुख ही प्राप्त करते हैं; जो शरीर को, आती-जाती श्वास को ध्यान का विषय बनाते हैं, वे शरीर संबंधी फल को प्राप्त करते हैं। पर को ध्यान का ध्येय बनाने से पर में अपनापन होता है। पर में अपनापन होने पर दुःख अनिवार्य है; क्योंकि पर का वियोग अनिवार्य है और जो स्व को, अपनी आत्मा को ध्यान का ध्येय बनाते हैं; वे आत्मा संबंधी फल अर्थात् अतीन्द्रिय आनंद को प्राप्त करते हैं।

जिससे अपनापन होता है; उसका साथ अच्छा लगता है, आनंददायी होता है। 'पर' के साथ ऐसा नहीं होता, वे हमेशा साथ नहीं रह सकते। माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी की तो बात जाने ही दो; यह शरीर भी सदा साथ नहीं रहता; जबकि हम अपनी आत्मा के साथ सदा रहते हैं। सदा रहते क्या हैं, हम स्वयं आत्मा ही हैं। अतः स्व का त्रिकाली ध्रुव आत्मा का आत्मा में, स्व में उपयोग का स्थिर होने रूप ध्यान अतीन्द्रिय आनंद की प्राप्ति का कारण होता है।

यहाँ विशेष बात ध्यान रखने की यह है कि - यद्यपि ध्यान का ध्येय स्व आत्मा है। स्व में स्वपने तन्मय होना ही ध्यान होता है; किंतु ध्यान के समय 'पर' भी परपने ज्ञेय बनते हैं। 'पर' को परपने जानना आत्मानुभूति में बाधक नहीं; वह तो आत्मा का स्वभाव है।

इसप्रकार हम देखते हैं ध्यान करने का अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि ध्यान तो हम करते ही रहते हैं। ध्यान के बिना तो इस जगत के भी किसी भी काम में सफलता नहीं मिलती। अतः सभी को ध्यान रखने का, ध्यान करने का अभ्यास है ही। इसलिए आवश्यकता ध्यान के अभ्यास करने की नहीं, ध्येय को बदलने की है।

रुचि ध्येय को निर्धारित करती है। आनंद, सुख और दुःख निवृत्ति की भावना रुचि को निर्धारित करती है। अतः जब तक पाँच इंद्रियों के विषय भोगों में दुःख बुद्धि नहीं होगी, तब तक उसमें अरुचि नहीं होगी। जब तक अरुचि नहीं होगी; तब तक ध्येय नहीं बदलेगा। जब तक ध्येय

नहीं बदलेगा, तब तक ध्यान का विषय नहीं बदलेगा। जब तक ध्यान का विषय नहीं बदलेगा, तब तक ध्यान का फल भी नहीं बदलेगा। इसीलिए आवश्यकता असली सुख को जानने की है, पहचानने की है, मानने की है; असली सुख आत्मा में है। उसके निर्णय के बिना रुचि बदलेगी कैसे? जब तक रुचि नहीं बदलेगी, तब तक लाख उपाय करो ध्येय नहीं बदलेगा। जब तक ध्येय नहीं बदलेगा, तब तक आत्मा का अनुभव नहीं होगा।

(iv) ध्यान का फल – आर्तध्यान का फल तिर्यंच गति है। रौद्रध्यान का फल नरक गति है। धर्मध्यान का फल अतीन्द्रिय आनंद का प्रारंभ है। शुक्लध्यान का फल अतीन्द्रिय आनंद की सदा के लिए प्राप्ति है। संपूर्ण मोह–राग–द्वेष से मुक्त होना है। आत्मध्यान रूप धर्मध्यान यदि जघन्य अंतर्मुहूर्त भी हो जाए तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती है और आत्मध्यान रूप शुक्लध्यान लगातार होता रहे, टिका रहे तो केवलज्ञान की प्राप्ति होती है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि 'आत्मध्यान' का फल सदा के लिए प्राप्त होने वाला आनंद है।

संक्षेप में कहें तो ध्यान के फल को समझ कर, ध्येय का सही निर्णय होने पर, उसकी तीव्रतम रुचि जागृत हो जाने पर, उस पर से ध्यान हटता ही नहीं है, उसका ध्यान सहज ही होता है। इसलिए कहा गया है – ध्यान यत्न साध्य नहीं, सहज साध्य है।

2. बाह्य सावधानी सहित तैयारी – बाह्य तैयारी में ध्यान का समय, स्थान व आसन निश्चित करना होता है। सही समय, सही स्थान व सही आसन – ध्यान के बहुत पूर्व होने वाली सहयोगी क्रियाएँ हैं, ध्यान नहीं; धर्म भी नहीं।

ध्यान का समय – ध्याता अपनी सभी परिस्थितियों को देखकर, समझकर अपनी सुविधानुसार जो समय उसे निर्विघ्न लगे, उस समय ध्यान कर सकता है। जैसा कि **महापुराण** में कहा भी गया है – 'काल भी वही योग्य है जिसमें उत्तम रीति से योग का समाधान प्राप्त होता है। ध्यान करने वाले के लिए दिन-रात्रि और वेला आदि रूप से समय में किसी प्रकार का नियमन नहीं किया जा सकता है।' (सर्ग 21, श्लोक 81)

अवस्था की अपेक्षा ध्याता को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं- अव्रती श्रावक, अणुव्रती और महाव्रती मुनिराज। जिनागम के अनुसार उक्त तीनों को ही दिन में तीन बार ध्यान करना चाहिए। विशेष इतना कि अव्रती गृहस्थ श्रावक को दो घड़ी सुबह, दो घड़ी दोपहर व दो घड़ी शाम को ध्यान (सामायिक) करना चाहिए। एक घड़ी 24 मिनट की होती है। अतः गृहस्थ श्रावक को एक बार में एक मुहूर्त 48 मिनट तक सामायिक करना चाहिए। अणुव्रती को तीनों समय चार-चार घड़ी अर्थात् चार घंटा 48 मिनट सामायिक करना चाहिए और महाव्रती मुनिराज को 6-6 घड़ी अर्थात् 7 घंटे 12 मिनट सामायिक (ध्यान) करना चाहिए।

ध्यान के स्थान – ध्यान करने का स्थान समतल, छिद्र रहित, जीव-जंतु रहित, शुद्ध होना चाहिए। मुनिराजों का स्थान उक्त विशेषताओं के साथ-साथ मौसम के अनुसार बदलता रहता है। वे पर्वत के शिखर, पर्वत की गुफा, वृक्ष की कोटर, वृक्ष के नीचे, नदी का तट, जीर्ण उद्यान (बगीचा), सिद्धक्षेत्र, चैत्यालय आदि शांत व उपद्रव रहित निराकुल स्थान पर ध्यान करते हैं। जैसा कि कहा भी है-

करते तप शैल नदी-तट पर, तरु-तल वर्षा की झड़ियों में।

ध्यान के आसन – मुख्य रूप से हमारे जीवन में तीन आसन होते हैं – लेटना, खड़े होना और बैठना। लेटना प्रमाद अवस्था है। अक्सर इस आसन का प्रयोग आराम करने, सोने के लिए किया जाता है। खड़े

होना, सावधान (अटेंशन) मुद्रा है। इस मुद्रा में सामान्य जन को अपना उपयोग शरीर पर रखना ही होता है। अन्यथा उपयोग हटाने पर शरीर खड़ा नहीं रह सकता; गिर जाता है। बैठने को सुखासन या पद्मासन भी कहा जाता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है सभी जन के लिए यह आसन आरामदायक अवस्था है। उपयोग शरीर पर न रहे तो भी शरीर गिरता नहीं; टिका रहता है। ध्यान अवस्था शरीर से उपयोग हटाकर स्वयं पर केंद्रित करने की अवस्था है। अतः ध्यान अवस्था में आसन ऐसा होना चाहिए कि शरीर से उपयोग हट भी जाए तो भी शरीर गिरे नहीं, टिका रहे; क्योंकि ध्यान में मतलब उपयोग से होता है। उपयोग आत्मा पर रहना चाहिए, अन्य किसी पर नहीं। जब उपयोग आत्मा पर जाता है तब न तो कोई मन की क्रिया होती है, न वाणी की और न ही शरीर की। उक्त सभी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए ध्यान के मुख्य दो आसन बताए गए हैं – खड्गासन और पद्मासन।

सभी तीर्थंकर भगवन्तों की मूर्तियाँ इन्हीं दो आसनों में मिलती हैं।

खड्गासन में ध्यान करना सभी के लिए संभव नहीं है। वह तो वज्रवृषभनाराच संहनन के धारी मुक्तिगामी ही कर सकते हैं; क्योंकि उनका उपयोग शरीर से हटने पर भी उनका शरीर गिरता नहीं है; टिका रहता है। अतः अन्य सभी के लिए पद्मासन ही उपयुक्त है। पद्मासन में कमर सीधी होती है और बाएं हाथ के ऊपर दायां हाथ रखा जाता है।

नेत्र पूर्ण बंद होना आलस की निशानी है। अतः पद्मासन व खड्गासन दोनों ही आसनों में नेत्र न पूरे बंद होते हैं, और न ही पूरे खुले होते हैं अर्थात् नासाग्र दृष्टि होती है। उक्त दोनों आसन ऐसे आसन हैं जिनमें उपयोग शरीर से हटने पर भी शरीर टिका रहता है, गिरता नहीं है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आसन अर्थात् काया को रोकना। काया की कोई चेष्टा न करना अर्थात् ध्यान अवस्था के पूर्व काया को

ऐसी स्थिति में रखना कि उसका 'पर' से ध्यान हटने पर भी वह अस्थिर न हो, गिरे न। यदि शरीर गिरेगा तो उपयोग उस पर जाएगा, जबकि हमें उपयोग आत्मा पर ले जाना है।

सामान्य तौर पर ध्यान का कोई आसन नहीं होता। सभी आसन ध्यान के आसन हो सकते हैं। किसी भी आसन में ध्यान हो सकता है, पर स्वस्थ अवस्था में दो ही आसन मुख्य हैं। विशेष इतना कि बीमारी आदि की विशेष परिस्थितियों में, असमर्थता की स्थिति में जिस आसन में सुविधाजनक तरीके से अध्ययन-ध्यान कर सकते हैं, वैसे करना चाहिए। जैसा कि आचार्य **जिनसेन महापुराण** में पर्व 21 के 75वें छंद में लिखते हैं- ध्यान बैठकर, खड़े रहकर और लेट कर भी किया जा सकता है। शरीर की जो भी अवस्था ध्यान की विरोध करने वाली न हो; उस अवस्था में अपनी सुविधानुसार ध्यान किया जा सकता है।

यदि किसी व्यक्ति की स्थिति खड़े होने की या बैठने की न हो, तो क्या वह आत्मध्यान से वंचित हो जाएगा? नहीं! कदापि नहीं!

अंत में हम कह सकते हैं कि **ध्यान के आसन, समय और स्थान आदि में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि मन, वाणी और शरीर की वजह से हमारा उपयोग बाहर न जाए।**

6. ध्यान की सामग्री

जिसप्रकार लौकिक में वस्तुओं को ग्रहण करने में संडासी (पकड़) आदि साधन होते हैं। उसीप्रकार आत्मा को कैसे ग्रहण करें? किस साधन से ग्रहण करें? इस शंका का समाधान करते हुए, ध्यान को ग्रहण करने की सामग्री बताते हुए जिन मत में कहा गया है कि- प्रज्ञा, बुद्धि, मतिज्ञान ही वह सामग्री है, जिससे आत्माको ग्रहण किया जाता है। आत्मा को अपने ज्ञान का ज्ञेय बनाना, उसका ध्यान करना ही आत्मा का ग्रहण करना है। जिस प्रज्ञा से पर से भिन्न आत्मा को जाना था, उसी प्रज्ञा से पर से भिन्न आत्मा को जानते रहना ही ध्यान है, आत्मा का ग्रहण करना है। जिससे आत्मा जाना जाये - ऐसी प्रज्ञा, ज्ञान का क्षयोपशम सभी सैनी पंचेंद्रिय जीवों के सदा उपलब्ध है।

वर्तमान में आठ वर्ष के ऊपर के सभी मनुष्यों को भी वह प्रज्ञा, ज्ञान है; किंतु अधिकांश जीव उस ज्ञान के क्षयोपशम को दुनियादारी में, पैसे कमाने में बर्बाद कर रहे हैं। जैसे कोई ग़रीब अपने सभी पैसे घूमने-फिरने में उड़ा दे और बाद में रोटी खाने के भी पैसे ना बचें; वैसे ही इतनी बढ़िया बुद्धि, ज्ञान, प्रज्ञा है सभी मनुष्यों के पास कि सम्यग्दर्शन हो जाए, केवलज्ञान हो जाए; परंतु सभी इसे पंचेन्द्रिय भोगों में बर्बाद कर रहे हैं। पर अभी भी हमारा काम हो सकता है; क्योंकि वह प्रज्ञा अभी भी हमारे पास मौजूद है; किंतु वह कब तक रहेगी इसका भरोसा नहीं, कभी भी जा सकती है। अतः एक समय भी बर्बाद करने जैसा नहीं है।

वैसे तो क्रमबद्धपर्याय की दृष्टि से विचार करें तो सभी जीवों के ज्ञान के ज्ञेय निश्चित हैं। जो ज्ञान हमें मिला है, उसके ज्ञेय भी निश्चित हैं; फिर भी मानो हमें जानने की स्वतन्त्रता मिल जाये, तो हम अपना ज्ञान कहा लगायेंगे; यह नक्की करेगा कि हम कहाँ जाएँगे? इससे हमारी रुचि का पता चलेगा।

जिसमें उपयोग लगाने की रुचि होगी, समझ लो अगली पर्याय में ज्ञान का ज्ञेय बनने का वही नक्की है, क्रमबद्ध में वही निश्चित है; क्योंकि रुचि ध्यान की नियामक है, यही निमित्त-नैमित्तिक संबंध है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि- ध्यान की सामग्री कहीं बाहर से जुटाने की आवश्यकता नहीं। सभी सैनी पंचेन्द्रिय जीवों के पास वह विद्यमान होती ही है।

7. ध्यान से स्ट्रेस फ्री (तनाव मुक्त) कैसे होंगे? दुःखों से मुक्त कैसे होंगे?

यह जानने के पहले हमें यह जानना जरूरी है कि, हमें स्ट्रेस (तनाव) होता क्यों है? पर में कुछ अच्छा या बुरा करने की हमारी

इच्छा पूरी नहीं होती है; तो हमें स्ट्रेस (तनाव-चिंता) होती है। हमारी वही अधूरी इच्छा पूरी करने का तीव्र विकल्प, उसका निरंतर लगातार चिंतन ही हमारी चिंता में डेवलप (विकसित) हो जाता है, टेंशन (तनाव) में बदल जाता है। लगातार बना रहने वाला टेंशन स्ट्रेस (चिंता) में विकसित हो जाता है। इसप्रकार **पर में फेरफार करने की हमारी इच्छा, बुद्धि (विकल्प) ही हमारे टेंशन का, तनाव का, चिंता का कारण होता है।** वस्तुत: पर में हम कुछ कर सकते नहीं; उन में कुछ करने का भाव, उनके जीवन में होने वाली घटनाओं को बदलने का भाव ही हमारी चिंता का कारण होता है। जब हम यह समझ जाएँगे कि पर में हम कुछ कर सकते नहीं; क्योंकि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में कुछ भी करने में असमर्थ है, तो ही हम चिंता से, टेंशन से, स्ट्रेस से मुक्त हो सकते हैं; फ्री हो सकते हैं। पर में बदलाव के भाव से हम दु:खी थे, चिंतित थे। अपने इस भाव को बदलने से ही टेंशन फ्री, स्ट्रेस फ्री हो सकते हैं।

चिंतन ध्यान की पूर्व अवस्था है, जिसमें किसी एक विषय पर चित्त एकाग्र होता है तथा समस्त चिंताओं का निषेध होता है।

संक्षेप में कहें तो पर में फेरबदल का चिंतन चिंता का कारण है। इससे बचने के दो उपाय हैं -

(1) पर में चेंज (फेरफार) का विचार त्याग दो। चिंता स्वयं ही समाप्त हो जाएगी।

(2) स्व का चिंतन करो। इससे पर का चिंतन स्वत: समाप्त हो जाएगा, चिंता समाप्त हो जाएगी । जैसा कि इष्टोपदेश में कहा गया है- पर का उपकार करने का भाव त्याग करके, अपने उपकार करने में तत्पर हो जा। दिखाई देने वाले इस जगत की तरह अज्ञानी जीव पर का उपकार करता हुआ पाया जाता है। ।।32।।

यहाँ कोई कह सकता है – पर का चिंतन छोड़ने से टेंशन से तो फ्री हो जाएँगे, पर हमारी समस्या तब भी बनी रहेगी। अपने पर होने वाले उपसर्गों से कैसे बचेंगे?

स्व का चिंतन करने से चिंता से तो बचते ही हैं, अपने ऊपर होने वाले उपसर्गों का भी अनुभव नहीं होता। जैसा कि इष्टोपदेश के 24वें छंद में कहा है–

'आत्मा का चिंतवन करने से परीषह आदि का अनुभव नहीं होता। जिससे आस्रवों को रोकने वाली कर्मों की निर्जरा शीघ्र होने लगती है।'

इसप्रकार हम देखते हैं कि स्व का चिंतन, मनन, ध्यान ही एकमात्र ऐसा उपाय है; जो संपूर्ण दुःखों से मुक्ति का कारण है।

8. ध्यान के भेद

जैन मत में विषय की भिन्नता के आधार पर ध्यान के चार भेद किये गये हैं। जो निम्न हैं :- आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान। इन चारों ध्यानों में प्रत्येक ध्यान के चार-चार भेद हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर ध्यान सोलह प्रकार के हो जाते हैं।

1. आर्तध्यान – दुःख पीड़ारूप चिंतवन को आर्तध्यान कहते हैं। यह चार प्रकार का होता है- (क) अनिष्ट संयोगज, (ख) इष्ट वियोगज, (ग) वेदना जन्य, (घ) निदानज

(क) अनिष्ट संयोगज – अनिष्ट पदार्थों के संयोग होने पर, उन्हें दूर करने के लिए होने वाला प्रबल चिंतवन अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान है।

(ख) इष्ट वियोगज – इष्ट पदार्थों के वियोग होने पर उन्हें प्राप्त करने के लिए होने वाला प्रबल चिंतवन इष्ट वियोगज आर्तध्यान है।

(ग) वेदनाजन्य – रोग जनित पीड़ा होने पर उसे दूर करने के लिए होने वाला संक्लेश परिणाम रूप प्रबल चिंतवन वेदनाजन्य आर्तध्यान है।

(घ) निदानज – भविष्य काल संबंधी विषयों की प्राप्ति की कामना में चित्त का तल्लीन होना निदानज आर्तध्यान है।

उक्त चारों आर्तध्यान अपनी-अपनी भूमिकानुसार पहले गुणस्थान से छठवें गुणस्थान तक होते हैं, पर ध्यान रखने की बात यह है कि छठवें गुणस्थान में निदानज आर्त ध्यान नहीं होता; शेष तीन आर्तध्यान होते हैं। (तत्त्वार्थसूत्र अध्याय 9 सूत्र 31 से 34)

2. रौद्रध्यान – निर्दयता (क्रूरता) में होने वाले आनंद रूप परिणामों को रौद्रध्यान कहते हैं। यह भी चार प्रकार का होता है – (क) हिंसानन्दी , (ख) मृषानन्दी ,(ग) चौर्यानन्दी और (ग) परिग्रहानन्दी

(क) हिंसक कार्यों और भावों में आनन्दित होना, उसीप्रकार के भावों में तल्लीन रहना **हिंसानन्दी रौद्रध्यान** है।

(ख) असत्य बोलने और बोलने के भावों में आनन्दित होकर तल्लीन रहना **मृषानन्दी रौद्रध्यान** है।

(ग) चोरी करने और चोरी संबंधी भावों में आनन्दित होकर तल्लीन रहना **चौर्यानन्दी रौद्रध्यान** है।

(घ) परिग्रह जोड़ना, जोड़ने व रक्षा करने के भावों में आनन्दित होकर तल्लीन रहना **परिग्रहानन्दी रौद्रध्यान** है।

यह रौद्रध्यान अपनी-अपनी भूमिका अनुसार पहले से पाँचवें गुणस्थान तक होता है।

उक्त दोनों ध्यान ज्ञानी-अज्ञानी दोनों को अपनी-अपनी भूमिकानुसार निरंतर होते रहते हैं।

उक्त दोनों ध्यानों में आर्तध्यान दुःखरूप है, दुःखी होने रूप है और रौद्रध्यान हिंसादि पापों व रागादि भावों में आनन्दरूप है। कर्मोदय से प्राप्त होनेवाले इष्टानिष्ट संयोग भी परिग्रह नामक पाप ही हैं। अनुकूल संयोगों में आनंदित होना भी परिग्रहानन्दी रौद्रध्यान है।

उक्त दोनों ध्यानों में मिथ्यादृष्टियों के आर्तध्यान को तिर्यंचगति का और रौद्रध्यान को नरकगति का कारण माना गया है।

संक्षेप में कहें तो दुःखरूप आर्तध्यान और पाँच पापों में आनंदरूप रौद्रध्यान – दोनों ही संसार के कारण हैं तथा धर्मध्यान व शुक्लध्यान मोक्ष के कारण हैं।

3. धर्मध्यान – धर्म सहित ध्यान को धर्मध्यान कहते हैं। धर्म माने वस्तु का स्वभाव और ध्यान माने एकाग्रता। वस्तु स्वभाव की ओर एकाग्रता ही धर्मध्यान है। इसप्रकार निश्चय धर्मध्यान निज आत्मा का अवलोकन करना, जानना और उसी में उपयोग को एकाग्र करना है।

यह एकाग्रता चिंता रहित स्व के चिंतन से होती है। स्व में एकाग्र होने के लिए 'स्व' का वास्तविक स्वरूप जानना आवश्यक है। स्व के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए शास्त्रों का अध्ययन आवश्यक है। व्यवहार धर्मध्यान शास्त्रों के अध्ययन रूप ही है।

निश्चय धर्मध्यान के साथ होने वाले शुभ राग को उपचार (व्यवहार) से धर्मध्यान कहते हैं। यह व्यवहार धर्मध्यान चार प्रकार का है – (क) आज्ञा विचय, (ख) अपाय विचय, (ग) विपाक विचय और (घ) संस्थान विचय

(क) आज्ञा विचय – आगम की आज्ञा के अनुसार श्रद्धापूर्वक गहन विचार करना आज्ञाविचय नामक धर्मध्यान है। बहुत से विषय ऐसे हैं; जिन्हें सीधे जानना संभव नहीं है। जैसे जमीकंद में अनंत जीव हैं– इस बात का निर्णय जिनागम के आधार से ही हो सकता है; क्योंकि वे जीव इतने सूक्ष्म हैं कि उन्हें इन्द्रियप्रत्यक्ष से जानना संभव नहीं है अथवा करणानुयोग आदि में जो छद्मस्थ के प्रत्यक्ष और अनुमान गोचर नहीं है, वे सभी कथन सूक्ष्म हैं। यहाँ विशेष ध्यान यह रखना है कि प्रयोजनभूत में तो परीक्षा प्रधानी होकर यथार्थ निर्णय करना चाहिए और अप्रयोजनभूत को सर्वज्ञ की आज्ञानुसार माने तो 'आज्ञा विचय धर्म ध्यान' है।

(ख) अपाय विचय – मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र संसार के कारण होने से मुक्तिमार्ग के अपाय (विरोधी) हैं, अज्ञानी जीव इस अपाय से कैसे बचें – इस बात का प्रबल चिन्तन अपायविचय नामक धर्मध्यान है।

इस धर्मध्यान का दूसरा नाम **उपायविचय** भी है; क्योंकि इसमें मुक्ति प्राप्त करने के उपाय का भी गंभीर चिन्तन होता है। मुक्ति के उपायरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का विचार होता है। उक्त संदर्भ में किया गया गहन तत्त्वविचार ही अपायविचय या उपायविचय नामक धर्मध्यान है।

(ग) विपाक विचय – कर्मों के विपाक के संदर्भ में विचार करना विपाकविचय नामक धर्मध्यान है। कौन से कर्म का विपाक या उदय कब होता है, उसका फल क्या है? आदि सम्पूर्ण कर्मविषयक गहरा चिन्तन इस विपाकविचय नामक धर्मध्यान में आता है।

(घ) संस्थान विचय – जिनागम में प्रतिपादित लोक का क्या आकार है? ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक की रचना आदि जैनधर्म संबंधी भूगोल का विचार संस्थानविचय नामक धर्मध्यान है।

उक्त चारों प्रकार के धर्मध्यानों की विषयवस्तु पर ध्यान दें तो एक बात स्पष्ट होती है कि जिनागम के अध्ययन बिना धर्मध्यान संभव ही नहीं है; क्योंकि जिनाज्ञा जाने बिना आज्ञाविचय धर्मध्यान कैसे होगा? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप मुक्तिमार्ग को समझे बिना अपायविचय धर्मध्यान संभव नहीं है। इसीप्रकार जिसमें कर्म सिद्धांत और त्रिलोक की रचना का निरूपण है, उन करणानुयोग के ग्रंथों के अध्ययन के बिना विपाकविचय और संस्थानविचय धर्मध्यान संभव नहीं।

यह धर्मध्यान मिथ्यादृष्टियों को नहीं होता, यह तो मात्र ज्ञानी सम्यग्दृष्टि को ही होता है। विशेष इतना कि पंचम काल में एकमात्र धर्मध्यान ही होता है और यह गृहस्थों के भी संभव है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि व्यवहार धर्मध्यान में करने जैसी (कर्तापने की) भाषा होती है। वह धर्मध्यान स्वाध्याय रूप है, विकल्पात्मक है, चिन्तनात्मक है। चिंतन ध्यान का प्रारंभिक रूप है और निश्चय धर्मध्यान विकल्परूप चिंतन व चिंता से रहित निर्विकल्पक होता है।

समस्त विकल्पों से रहित जब ज्ञान आत्मा में सहज लग जाता है, आत्मा को ही जानता है, जानता रहता है; लगातार जानता रहता है– वही निश्चयध्यान अवस्था है अर्थात् **जब तक विकल्प चलते रहते हैं, तब तक चिंतन है और जब निर्विकल्प हो जाते हैं, तो वह ध्यान कहलाता है।**

इसप्रकार हम देखते हैं कि निश्चय धर्मध्यान तो स्वयं को स्वयं जानने रूप, मानने रूप, अनुभव करने रूप है और व्यवहार धर्मध्यान जिनागम में प्रतिपादित वस्तु व्यवस्था को समझने रूप, शास्त्रों के अध्ययन रूप है। जैसा कि रयणसार में कहा भी है –

अज्झयणमेव झाणं, पंचेंदियणिग्गहं कसायं पि ।
तत्तो पंचमकाले, पवयणसारब्भासमेव कुज्जाहो ।।90।।

शास्त्रों का अध्ययन ही ध्यान है; क्योंकि उसी से पंचेन्द्रियों और कषायों का निग्रह होता है। इसलिए इस पंचमकाल में प्रवचनसार अर्थात् जिनागम का ही अभ्यास करना चाहिए।

संक्षेप में कहें तो बुद्धिपूर्वक ध्यान तो अध्ययन ही है और उपदेश तो बुद्धिपूर्वक करने का ही दिया जाता है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि पंचमकाल में अर्थात् इस युग में तो विशेषकर गृहस्थों के लिए अध्ययन ही मुख्य है। शास्त्रों के अध्ययन के बिना व्यवहार धर्मध्यान संभव ही नहीं है।

4. शुक्लध्यान – आत्मस्वभाव में विशेष एकाग्रता करना शुक्लध्यान है। (वृहदद्रव्यसंग्रह प्रवचन पृष्ठ 338) यह वज्रवृषभनाराच संहनन वालों के ही होता है, चौथे काल में ही होता है, अभी पंचम काल में होता ही नहीं है। इस ध्यान में लेश्याएँ शुक्ल होती हैं। इसके भी चार भेद हैं – (क) पृथक्त्ववितर्क वीचार, (ख) एकत्ववितर्क अवीचार, (ग) सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति और (घ) व्युपरतक्रिया निवृत्ति।

(क) पृथक्त्ववितर्कवीचार – जिस ध्यान में ध्यान करने वाला पुरुष निज शुद्धात्मा का संवेदन छोड़कर बाह्य पदार्थों का चिंतन नहीं करता है, तो भी उसे जितने अंश में स्वरूप में स्थिरता नहीं है, उतने अंश में इच्छा के बिना विकल्प उत्पन्न होते हैं। इस कारण इस ध्यान को 'पृथक्त्ववितर्कवीचार[1]' कहते हैं। इस ध्यान में अनेक द्रव्य विषय होते हैं और इन विषयों का विचार करते समय मुनि मन-वचन-काय योगों

---

1. **टिप्पणी :** द्रव्य, गुण, पर्याय के भिन्नपने को **पृथक्त्व** कहते हैं। स्व शुद्धात्मा की अनुभूति जिसका लक्षण है – ऐसे भावश्रुत को और उसके (स्वशुद्धात्मा के) वाचक अंर्तजल्प रूप वचन को 'वितर्क' कहते हैं अथवा श्रुतज्ञान को 'वितर्क' कहते हैं। विशेष रूप से तर्क अर्थात् विचार करने को **वितर्क** कहते हैं।

इच्छा के बिना एक अर्थ से दूसरे अर्थ में, एक वचन से दूसरे वचन में; मन, वचन, काय – इन तीन योगों में से किसी एक योग से दूसरे योग में जो परिणमन (पलटना) होता है, उसे 'वीचार' कहते हैं अथवा अर्थ संक्रांति, व्यंजन संक्रांति और योग संक्रांति को **'वीचार'** कहते हैं। यह 'वीचार' मात्र प्रथम शुक्लध्यान में होता है।

ध्यान करते समय द्रव्य को छोड़कर पर्याय का ध्यान करना और पर्याय को छोड़कर द्रव्य का ध्यान करना अर्थात् ध्यान के विषय को बदलना **'अर्थ संक्रांति'** है।

एक श्रुत वचन का आलंबन लेकर दूसरे श्रुत वचन का आलंबन लेना, फिर उसे त्याग कर अन्य वचन का आलंबन लेना **'व्यंजन संक्रांति'** है।

काययोग को छोड़कर दूसरे योग को स्वीकार करना और दूसरे योग को छोड़कर काययोग स्वीकार करना, **'योग संक्रांति'** है।

उक्त प्रकार के परिवर्तन को **'वीचार'** कहते हैं।

का परिवर्तन करता है। यह पहला शुक्लध्यान आठवें गुणस्थान से आरंभ होकर क्षपक श्रेणी वालों के 10वें गुणस्थान तक और उपशम श्रेणी वालों के 11वें गुणस्थान तक होता है।

इसके निमित्त से मोहनीय कर्म का क्षय या उपशम होता है अर्थात् मोह-राग-द्वेष का अभाव होता है। इसप्रकार हम देखते हैं कि यह ध्यान उपशम श्रेणी या क्षपक श्रेणी में ही होता है।

यह शुक्लध्यान तीनों योगों में होता है और 'वितर्क' व 'वीचार' दोनों से सहित होता है।

(ख) एकत्ववितर्क अवीचार – जिस ध्यान में ध्याता (ध्यान करने वाला) एक ही योग का आश्रय लेकर एक ही द्रव्य का चिंतन करता है, उसे एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यान कहते हैं।[1]

यह शुक्लध्यान वीचार रहित व वितर्क सहित होता है। इसमें अर्थ, वचन और योग का पलटना नहीं होता। यह द्रव्य-गुण-पर्याय में परावर्तन नहीं करता अर्थात् यह संक्रांति रहित है।

यह शुक्लध्यान तीनों योगों में से किसी एक योग में होता है। यह क्षीणमोह 12वें गुणस्थान में होता है। इसके निमित्त से ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय कर्म का क्षय होता है। इसप्रकार चार घातिया कर्मों का अभाव आरंभ के दो शुक्लध्यानों से होता है।

(ग) सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाति – जो ध्यान सूक्ष्मकाय योग के अवलंबन से होता है, उसे सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति शुक्लध्यान कहते हैं।

जिसमें क्रिया अर्थात् योग सूक्ष्म होता है, वह सूक्ष्म क्रिया कहा जाता है और वह गिरता नहीं है; अतः वह अप्रतिपाती कहलाता है। यह काययोग वालों को 13वें गुणस्थान के अंतिम समय में होता है। केवली भगवान को उपचार से यह ध्यान कहा है।

---

1. भगवती आराधना - मूल 880/882

(घ) व्युपरतक्रिया निवृत्ति – जिसमें आत्म प्रदेशों में परिस्पन्दन और श्वासोच्छवास आदि समस्त क्रियाएँ निवृत हो जाती हैं, उसे व्युपरतक्रिया निवृत्ति शुक्लध्यान कहते हैं।

इस शुक्लध्यान में किसी भी प्रकार का कंपन क्रिया अर्थात् योग नहीं है। यह 14वें गुणस्थान में अयोग केवलियों के होता है। इसके बाद सिद्ध दशा प्रगट हो जाती है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जिस ध्यान में ध्याता को इच्छा के बिना भिन्न-भिन्न ज्ञानात्मक विकल्प उत्पन्न होते हैं, वह पृथक्त्ववितर्कवीचार नामक पहला शुक्लध्यान है तथा जिस ध्यान में ध्याता एक ही योग का आश्रय लेकर एक ही द्रव्य का चिंतन करता है, वह 'एकत्ववितर्क अवीचार' नामक दूसरा शुक्लध्यान है। इसप्रकार हम देखते हैं कि प्रथम शुक्लध्यान तो मन, वचन, काय के तीनों योगों में होता है। दूसरा शुक्लध्यान किसी भी एक योग में ही होता है। तीसरा शुक्लध्यान एक काय योग में ही होता है और चौथा शुक्लध्यान अयोगी के होता है। प्रथम दो शुक्लध्यान पूर्वों के ज्ञाता द्वादशांग के धारी मुनियों के होते हैं तथा शेष दो शुक्लध्यान केवली भगवान के होते हैं।

सयोग केवली गुणस्थान के अंतिम अंतर्मुहूर्त काल में जब भगवान स्थूल योगों का निरोध करके सूक्ष्मकाययोग में प्रवेश करते हैं, तब उनको 'सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपात' नामक तीसरा शुक्लध्यान होता है और अयोग केवली गुणस्थान में योगों का पूर्ण निरोध हो जाने पर 'व्युपरतक्रियानिवृत्ति' नामक चौथा शुक्लध्यान होता है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि चार घातिया कर्मों का अभाव आरंभ के दो शुक्लध्यान से होता है और अघातिया कर्मों का अभाव तीसरे व चौथे शुक्लध्यान से होता है अर्थात् अरहंत व सिद्ध दशा की प्राप्ति शुक्लध्यान से ही होती है।

श्रेणी पर चढ़ने के पहले धर्मध्यान होता है और श्रेणी चढ़ने पर क्रमशः आरंभ के दोनों शुक्लध्यान होते हैं। ये दोनों आरंभ के शुक्लध्यान श्रुतकेवलियों के होते हैं। साथ ही साथ श्रुतकेवलियों के धर्मध्यान भी होता है। (तत्त्वार्थसूत्र 9/37,38)

अंत के दो शुक्लध्यान क्रमशः सयोग केवली और अयोग केवली के होते हैं।

केवली और श्रुतकेवलियों को होने वाला शुक्लध्यान पूर्णतः शुद्धोपयोग रूप ही होता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि चौथे अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान से लेकर सातवें अप्रमत्त संयत पर्यंत चार गुणस्थानों में धर्मध्यान होता है।

इस धर्मध्यान का आरंभ, मुक्ति मार्ग का आरंभ स्व में एकाग्रता का आरंभ कभी भी, कहीं भी और किसी भी गति में पंचेन्द्रिय सैनी जीव को हो सकता है।

इससे आगे आठवें अपूर्वकरण से लेकर 14वें अयोगी पर्यन्त सात गुणस्थानों में मात्र शुक्लध्यान ही है। मिथ्यादृष्टि जीव के यह दोनों ध्यान नहीं हैं।

× × × × × × × × × × ×

संक्षेप में कहा जा सकता है कि जब भी हम व्यक्ति या वस्तु को देखते हैं, तो हमारे मन में उनसे संबंधित अनेकों विचार चलने लगते हैं; विकल्प उठने लगते हैं। व्यक्ति या वस्तु के बारे में डिटेल (विस्तृत) जानने की इच्छा होने लगती है। व्यक्ति या वस्तु को जानने की यह सहज प्रक्रिया है।

उक्त सहज प्रक्रिया चलते-चलते, विचार करते-करते, वस्तु के बारे में डिटेल (विस्तार) से जानने का विकल्प जब समाप्त हो जाए, तो वह ध्यान कहलाता है। ध्यान में चिंतन से अलग कुछ नहीं करना है, बस जब विचार करते-करते विकल्प हट जाता है; तो ध्यान हो जाता है।

इसीप्रकार आत्मध्यान में आत्मा का चिंतन करते-करते आत्मा को जानने का विकल्प भी क्षीण होना चाहिए, समाप्त होना चाहिए। न जानने का विकल्प करना है, न ही विचार नहीं करने का विकल्प करना है। बस कोई भी विकल्प-विचार नहीं करना है। जब विचार बंद हो जाएगा तो वह चिंतन ध्यान बन जाएगा।

विचार करने में मन निमित्त रूप से था। अब जब मन काम करना बंद कर देगा, सोचना बंद कर देगा; तो मन की निमित्तता समाप्त हो जाएगी।

जब मन की निमित्तता समाप्त होगी, मन से कोई क्रिया नहीं होगी, तब ज्ञान मात्र ज्ञान को ही जानता हुआ आनंद का अनुभव करेगा। **यह अनुभव ही आत्मानुभूति है, ज्ञानानुभूति है।**

जैसा कि कहा भी है-

वस्तु विचारत ध्यावतें, मन पावे विश्राम।
रस स्वादत सुख ऊपजै, अनुभव ताकौ नाम।।

अर्थात् वस्तु का विचार करते-करते जब वह ध्यान बन जाए और मन को आराम मिल जाए, विश्राम मिल जाए, वह अपना काम न करे; तब जो आनंद का रस उत्पन्न होता है, उसे ही अनुभव कहते हैं।

इस अनुभव से पूर्व जिनागम से आत्मा का स्वरूप जाना जाता है। आत्मा का स्वरूप जानकर किसी जीव को उसी के संबंध में अनेकों विकल्प चलते हैं, विचार होते हैं। विचार होते-होते रुचि की तीव्रता बढ़ती है। रुचि की तीव्रता बढ़ने पर गहन चिंतन-मनन होता है - ऐसी प्रक्रिया अनेक बार होने पर धीरे-धीरे विचार कम होते हुए समाप्त हो जाते हैं। विकल्प भी नहीं रहते, वह निर्विकल्प हो जाता है। बस्स.... ज्ञान, ज्ञान को जानते रहता है। इस जानते रहने का नाम ही आत्मध्यान है, परम ध्यान है।

सभी जीव 'आत्मध्यान' के स्वरूप को समझकर, चिंतन का विषय बनाकर, विकल्पों से आत्मा को जानकर निर्विकल्प हों - इसी भावना से विराम लेती हूँ। ●

9. प्रश्नोत्तर

प्रश्न 1 – मन तो चंचल हैं, तो फिर ध्यान कैसे होगा?

उतर – मन चंचल है अर्थात् मन अनेक विषयों में तेज़ी से इधर उधर भटकता रहता है। कभी कुछ चाहता है, कभी कुछ। अनेक विषयों में भटकते मन का किसी एक विषय में लगने का नाम ही ध्यान है।

इस तरह एक विषय का चिंतन रूप ध्यान तो सभी जीव करते रहते हैं और विषय के अनुसार फल भी प्राप्त करते हैं। दुखों से मुक्ति के लिए तो वह एक विषय आत्मा होना चाहिए। अतः प्रेरणा आत्मध्यान की दी जाती है।

प्रश्न 2 – ध्यान किसको होता है? श्रावकों को या मुनिराजों को?

उतर – किसी एक विषय का चिंतन रूप ध्यान तो सभी जीवों को होता है; किंतु धर्मध्यान सैनी पंचेद्रिय सभी जीवों को हो सकता है और शुक्लध्यान तो मुनीराजों को ही होता है।

प्रश्न 3 – एक से चार इंद्रिय जीवों को कौनसा ध्यान होगा? क्योंकि ध्यान तो उत्तम संहनन वालों के होता है – ऐसा तत्त्वार्थसूत्र में कहा है?

उतर – एक से चार इंद्रिय जीवों को आर्त–रौद्र ध्यान होता है।

तत्त्वार्थसूत्र में शुक्लध्यान की चर्चा है, जो कि उत्तम संहनन वाले जीवों को ही होता है।

प्रश्न 4 – निर्विकल्प दशा किसे कहते हैं?

उत्तर – जब वस्तु का निश्चय होने के पश्चात् स्वद्रव्य व परद्रव्य का सामान्यरूप और विषेशरूप जानना वीतरागता सहित होता है, उस दशा का नाम निर्विकल्प दशा है।

प्रश्न 5 – उक्त प्रकार तो निर्विकल्प दशा में भी बहुत विकल्प हो रहे हैं, तो फिर उसे निर्विकल्प दशा कैसे कह रहे हैं? तर्क सहित बताइए।

उत्तर – निर्विचार होने का नाम निर्विकल्प नहीं है; क्योंकि छद्मस्थ के जानना विचार सहित ही होता है, उसका अभाव मानने से ज्ञान का अभाव होगा और तब जड़पना हो जायेगा; जो कि आत्मा के होता नहीं है। इसलिए विचार तो रहता है।

दूसरी बात परद्रव्यों को जानने या स्वद्रव्यों के विशेषों के जानने का नाम विकल्प नहीं हैं; क्योंकि राग-द्वेष वश किसी ज्ञेय को जानने में उपयोग लगाना और किसी ज्ञेय को जानने से छुड़ाना - इसप्रकार बारंबार उपयोग को भ्रमाने को विकल्प कहते हैं।

इसप्रकार निर्विकल्प दशा में रागात्मक विकल्प नहीं होते हैं और ज्ञानात्मक विकल्प इच्छा के बिना सहज चलते रहते हैं।

प्रश्न 6 – यदि ऐसा है तो, शास्त्रों में निर्विकल्प दशा में नय प्रमाण, निक्षेप आदि तथा दर्शन-ज्ञान आदि के विकल्पों का निषेध क्यों किया गया है?

उत्तर : जो जीव नय-प्रमाण आदि तथा दर्शन-ज्ञान आदि के विकल्पों में ही उलझे रहते हैं और अभेदरूप एक आत्मा का निर्णय नहीं करते, उन्हें ऐसा उपदेश दिया जाता है; क्योंकि उक्त सभी विकल्प वस्तु का निश्चय करने में कारण हैं। वस्तु का निश्चय होने पर इनका प्रयोजन कुछ भी नहीं रहता; इसलिए इन विचार रूप विकल्पों में उलझे रहने का निषेध किया गया है।

प्रश्न 7 – आत्मध्यान के लिए हमें क्या करना होगा?

उत्तर – आत्मध्यान के लिए हमें कुछ नहीं करना है। जो कर रहे हैं, वह करना बंद करना है।

प्रश्न 8 – शास्त्रों में तो कहा है कि स्व-पर का ज्ञान जरूरी है। ज्ञान के बिना ध्यान नहीं होगा ?

उत्तर – आत्मध्यान के लिए न तो पर को जानने का विकल्प करना है और न ही न जानने का अर्थात् किसी भी प्रकार का कोई भी विकल्प रंचमात्र नहीं करना है। ज्ञान का तो जानने का स्वभाव है, जो जानने में आएगा, आ जाएगा। हमें तो रंचमात्र भी विकल्प नहीं करना है। न स्व को जानने का, न पर को जानने का। हमारे ज्ञान का ज्ञेय क्या बनेगा, कब बनेगा – यह सब नक्की है, निश्चित है। शास्त्रों में जो कहा है वह स्व व पर के स्वरूप को जानने की बात है। अज्ञानी जीव ने अज्ञानवश 'पर' को 'स्व' मान रखा है तथा शास्त्रों के अध्ययन से स्व को स्व रूप, पर को पर रूप जानना है।

हमारे ज्ञान का ज्ञेय कब 'स्व' बनेगा और कब कौन सा 'पर' बनेगा यह सब हमारे हाथ में नहीं है; अतः इसका विकल्प करने की भी आवश्यकता नहीं है।

हमें 'पर' को जानने का रंचमात्र भी विकल्प नहीं होना चाहिए और जानने में आ जाए, तो क्यों आ गया – ऐसा विकल्प भी नहीं होना चाहिए – ऐसा हो तो जीव 'नॉर्मल' (सामान्य) है; नहीं तो 'एब्नार्मल' (असामान्य) है और 'एब्नार्मेलिटी' (असामान्यता) में ध्यान नहीं होता।

पर की बात जाने ही दो, हमें तो स्व को, अपने आप को, आत्मा को जानने का भी विकल्प नहीं करना है; प्रयत्न नहीं करना है। न हमें स्व या पर किसी को जानना है, न जानने का प्रयास करना है। तब क्या होगा?

होना क्या है, जो जानने में आएगा, आ जाएगा; नहीं आएगा, तो नहीं आएगा। जो भी ज्ञान का ज्ञेय बनेगा, उसे सहज भाव से ज्ञान का ज्ञेय बन जाने दो। पर पदार्थ ज्ञान का ज्ञेय बनने से ध्यान भंग नहीं होता।

संक्षेप में कहें तो पर पदार्थ जानने में आए, न आए; किंतु हमें रंचमात्र भी विकल्प नहीं होना चाहिए।

प्रश्न 9 – हमारी समस्या यह है कि आत्मा का स्वरूप तो हमने समझ लिया, उसके सभी विशेषणों का स्वरूप भी समझ लिया और चिंतन-मनन भी करते हैं, तो बार-बार वही चिंतन करने में उपयोग केंद्रित नहीं होता। अब आप ही बताएँ जब चिंतन में उपयोग एक जगह स्थिर न हो तो क्या करें ?

उत्तर – तुमने सही कहा! आत्मा के स्वरूप समझने में, विशेषण समझने में बहुत समय नहीं लगता है और हम छद्मस्थ का उपयोग भी बारम्बार एक रूप चिंतन में अधिक नहीं लगता है। भावलिंगी मुनिराज, गणधर आदि का भी उपयोग इसप्रकार नहीं रह सकता, इसलिए वे भी शास्त्र आदि कार्यों में उपयोग लगाते हैं। हमें भी अपना उपयोग शास्त्रादि पठन-पाठन, लेखन आदि में लगाना चाहिए। जैसे मुनिराज के ध्यान व अध्ययन - यह दो कार्य मुख्य हैं; वैसे ही हमारे भी भूमिकानुसार यही दो कार्य मुख्य होना चाहिए; क्योंकि इन कार्यों से उपयोग निर्मल होता है।

प्रश्न 10 – मेरा एक दोस्त कहता है- 'जबसे मेरे बच्चे घर छोड़कर गए हैं, तबसे मुझे संसार से ही वैराग्य हो गया है। अब तो मैं अपने स्वरूप का ही चिंतन करता हूँ। अब मुझे किसी से लेना-देना नहीं। मैं तो सिद्ध समान शुद्ध हूँ और स्वयं में मग्न, मैंने मोबाईल में आनंद ढूँढ लिया है।' क्या उसका यह ज्ञान, वैराग्य व आनन्द का ढंग (रास्ता) सही है?

उत्तर – नहीं! उसका यह ज्ञान और वैराग्य सही नहीं है। उसका

यह वैराग्य तो कषाय गर्भित (युक्त) है। वह पुत्रादि को खेद का कारण जानकर उनसे उदास हुआ, विरक्त हुआ और उसे वैराग्य मान रहा है। इस उदासी में, वैराग्य में अनंत आकुलता समाई हुई है। सच्चे वैराग्य में निराकुलता होती है। जैसे - कोई स्वप्न में अपने को राजा मानकर सुखी होता है; वैसे ही यह भ्रम से अपने को सिद्ध समान शुद्ध मानकर स्वयं आनन्दित हो रहा है। वर्तमान पर्याय में स्पष्ट संसारी है, अशुद्ध है और अपने को सिद्ध समान पर्याय से भी शुद्ध मानना उसका भ्रम है। शास्त्रों में जो सिद्धों से समानता बतलाई है, वह द्रव्यदृष्टि से बतलाई है; पर्याय में तो अशुद्धि है ही। जिस क्षणिक खुशी को वह सिद्ध समान अतींद्रिय आनंद समझ रहा है, वह तो रौद्रध्यान होने से नरक गति का कारण है। आपके मित्र ने न तो सच्चे आनंद का स्वरूप समझा है, न ही ज्ञान व वैराग्य का स्वरूप समझा है।

प्रश्न 11 – आप तो हमें यह बता दीजिए कि ध्यान करने के लिए क्या करना चाहिए? अभी तो हम णमोकार मंत्र पढ़ते हैं और स्तुति पढ़ते हैं।

उत्तर – अभी आप जो करते हो, वह सही करते हो; किन्तु वह ध्यान नहीं, ध्यान की पूर्व अवस्था है। ध्यान की पूर्व अवस्था को परम ध्यान समझना ही अज्ञानी की भूल है और ध्यान करने के लिए वो सब करना ही परम ध्यान में सबसे बड़ी बाधा है। परम ध्यान करने में प्रयासपूर्वक कुछ नहीं करना है। मन को आदेश देना बंद करना है। मन को किसी-न-किसी काम में लगाना, वही विकल्प है। अतः मन को कहीं लगाना नहीं है, फ्री छोड़ना है।

●

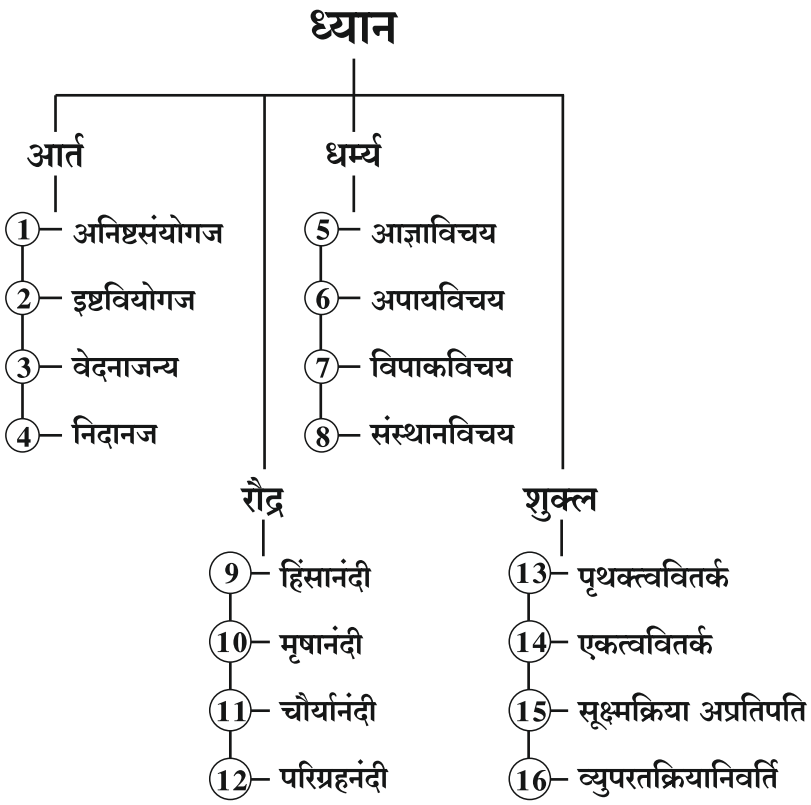
ध्यान
आर्त
धर्म्य
1 अनिष्टसंयोगज
2 इष्टवियोगज
3 वेदनाजन्य
4 निदानज
5 आज्ञाविचय
6 अपायविचय
7 विपाकविचय
8 संस्थानविचय
रौद्र
शुक्ल
9 हिंसानंदी
10 मृषानंदी
11 चौर्यानंदी
12 परिग्रहनंदी
13 पृथक्त्ववितर्क
14 एकत्ववितर्क
15 सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपति
16 व्युपरतक्रियानिवर्ति

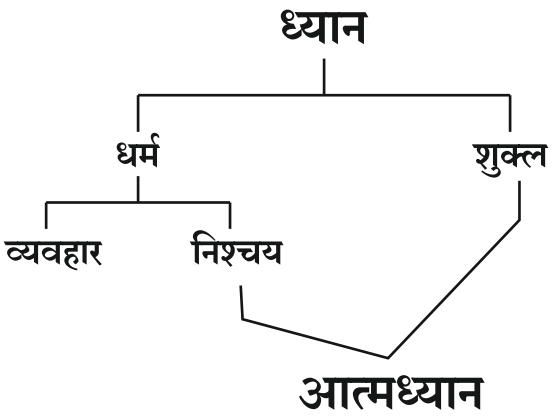
ध्यान
धर्म
शुक्ल
व्यवहार
निश्चय
आत्मध्यान

मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ

मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ,
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ।
मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण,
पर की मुझ में कुछ गंध नहीं।
मैं अरस अरूपी अस्पर्शी,
पर से कुछ भी संबंध नहीं।।
मैं रंग राग से भिन्न,
भेद से भी मैं भिन्न निराला हूँ।
मैं हूँ अखंड चैतन्य पिंड,
निज रस में रमने वाला हूँ।।
मैं ही मेरा कर्ता धर्ता,
मुझमें पर का कुछ काम नहीं।
मैं मुझ में रहने वाला हूँ,
पर में मेरा विश्राम नहीं।।
मैं शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध एक,
पर परिणति से अप्रभावी हूँ।
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व,
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ।।
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ,
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ ।

जैन बाल साहित्य के उत्कृष्ट लेखन हेतु अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् द्वारा **विद्वत्रत्न की उपाधि** से सम्मानित विद्वत्रत्न डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया को 8 मार्च 2008 को महिला दिवस के अवसर पर मुम्बई की महापौर के शुभ कर कमलों से भी सम्मानित किया गया है। आपका जन्म अशोकनगर (म.प्र.) में 30 जनवरी 1958 को हुआ।

आपके द्वारा एम.ए. में लघुशोध निबंध के रूप में लिखी गई पुस्तक मात्र 19 वर्ष की अवस्था (27-11-1977) में प्रकाशित हो गई।

आधुनिक बाल जैन साहित्य की प्रणेता आपने **जैन सिद्धान्तों को सर्वप्रथम पहेलियों के रूप में** प्रस्तुत कर जैन बाल साहित्य को नई दिशा प्रदान की है। खेल-खेल में **गेम्स के माध्यम** से बच्चों में जैन सिद्धान्तों का बीजारोपण करने का प्रयास सर्वप्रथम आपके द्वारा किया गया। आपके द्वारा लिखी गई बाल पुस्तकों में पहेलियों, कविताओं और प्रश्नोत्तर शैली में लिखे गए पाठों के माध्यम से तत्त्वज्ञान एवं भेदज्ञान कराया गया है। आध्यात्मिक जगत में ऐसा कोई घर न होगा, जहाँ आपके द्वारा लिखित बाल साहित्य, राम कहानी आदि साहित्य उपलब्ध न हो। बच्चों में बचपन से ही धार्मिक संस्कार कैसे डालें - उसकी ट्रेनिग आप देती रहती हैं। आपने विभिन्न आयुवर्ग को ध्यान में रखकर भिन्न-भिन्न शैलियों में अध्यात्म को जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया है। गद्य-शैली, पद्य-शैली, चम्पू (गद्य-पद्य मिश्रित) शैली, पत्रशैली, डायरीशैली, छोटे-छोटे मंचन योग्य नाटक, बड़े-बड़े नाटक आदि साहित्य की विभिन्न विधाओं के दर्शन आपकी कृतियों में होते हैं। आपने जैनदर्शन को आधुनिक पद्धति से पढ़ाने का एक व्यवस्थित कोर्स भी तैयार किया है।

आपके निर्देशन में सर्वप्रथम युवाओं के लिए देश भर में **art of happy living** नाम से सेमीनार कम वर्कशॉप के अनेकों आयोजन भी किए जाते हैं। धर्म प्रचारार्थ आप देश-विदेश की यात्राएँ करती रहती हैं।

आपके निर्देशन में 'परमागम ऑनर्स' शास्त्री कोर्स का आरम्भ जुलाई 2016 से हो गया है। आप दिव्य ध्वनि प्रचार-प्रसार (सर्वोदय) ट्रस्ट की अध्यक्ष, अखिल भारतीय विद्युत परिषद के महिला प्रकोष्ठ की भी अध्यक्ष हैं। अन्य अनेकों महिला संगठनों में आप किसी न किसी रूप में जुड़ी हैं। समयसार विद्या निकेतन ग्वालियर की आप निर्देशक हैं। वर्तमान में आप पी.एच.डी. की गाईड भी हैं। किसी भी विषय से पी.जी. किए हुए व्यक्ति यदि जैनदर्शन में पी.एच.डी. करना चाहते हैं तो आपके निर्देशन में कर सकते हैं।